

## Chapter सैंतालीस

### भ्रमर गीत

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह भगवान् श्रीकृष्ण के आदेश से उद्धव ने गोपियों को भगवान् का सन्देश दिया, उन्हें ढाढ़स बँधाया और फिर मथुरा लौट गये।

जब ब्रज की तरुणियों ने पीतवस्त्र तथा आकर्षक कुण्डल पहने कमल जैसे नेत्रों वाले उद्धव को देखा तो वे चकित थीं कि यह कृष्ण से कितना मिलता-जुलता रहा है। यह सोचते हुए कि यह कौन है, वे उद्धव के पास गईं और उन्हें घेर लिया। जब उन्हें लगा कि कृष्ण ने ही उन्हें भेजा होगा तो वे उन्हें एकान्त स्थान में ले गईं जहाँ उद्धव उनसे गोपनीय ढंग से अपने मन की बात कह सकें।

तत्पश्चात् गोपियाँ कृष्ण के साथ खेली गईं लीलाओं का स्मरण करने लगीं और सारी लाज-हया छोड़कर जोर जोर से रोने लगीं। एक गोपी कृष्ण के साथ अपने सान्निध्य के विषय में गम्भीर ध्यान लगाने लगी तो उसने अपने समक्ष एक भौरा देखा। इस भौरे को कृष्ण का दूत समझ कर उसने कहा, “जिस तरह भौरें विभिन्न फूलों के बीच मँडराते रहते हैं उसी तरह कृष्ण ने ब्रज की तरुणियों को छोड़

दिया है और अन्य स्त्रियों से स्नेह उत्पन्न कर लिया है।” यह गोपी ऐसे ही अपने कल्पित दुर्भाग्य एवं अपनी प्रतिद्वन्दिनी प्रेमिका के सौभाग्य के बारे में प्रलाप करती रही और पूरे समय भगवान् कृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं का गुणगान करती रही। तत्पश्चात् उसने घोषित किया कि भले ही कृष्ण ने गोपियों का परित्याग कर दिया हो किन्तु गोपियाँ उन्हें क्षण-भर के लिए भी नहीं भुला सकतीं।

उद्धव ने व्रज की इन गोपियों को जो कृष्ण को एक बार पुनः देखने के लिए उत्सुक थीं, ढाढ़स बँधाने का प्रयास किया। उद्धव ने बतलाया, “जहाँ भगवान् कृष्ण का दास बनने के लिए सामान्य पुरुषों को अनेक पुण्य करने पड़ते हैं वहाँ हे सीधी-सादी गोपियो! तुम इतनी भाग्यशालिनी हो कि भगवान् ने तुम सबों को अपनी शुद्धभक्ति प्रदान करने की कृपा की है।” तत्पश्चात् उद्धव ने उनसे भगवान् का सन्देश कह सुनाया।

उद्धव ने कृष्ण का उद्धरण देते हुए कहा, “मैं परमात्मा हूँ और सबों का परम आश्रय हूँ। मैं अपनी शक्तियों से ब्रह्माण्डों का सृजन, पालन तथा संहार करता हूँ। मैं तुम गोपियों को अत्यन्त प्रिय हूँ किन्तु अपने प्रति तुम सबों का आकर्षण बढ़ाने और तुम्हारी स्मृति को प्रखर बनाने के लिए ही मैंने तुम सबों को छोड़ा है। आखिर, जब किसी स्त्री का प्रेमी उससे दूर रहता है, तो वह सदा उसी पर चित्त टिकाये रखती है। निरन्तर मेरा स्मरण करते रहने से तुम पुनः अविलम्ब मेरा सान्निध्य प्राप्त कर सकोगी।”

तब गोपियों ने उद्धव से पूछा, “अब कंस के मरने से कृष्ण प्रसन्न तो हैं और अपने परिवार वालों तथा मथुरा की स्त्रियों की संगति का आनंद उठा सकते हैं न? क्या वे अब भी हमारे साथ खेली गयी सारी लीलाओं जैसे रासनृत्य का स्मरण करते हैं? क्या वे पुनः हमारे समक्ष प्रकट होकर हमें उसी तरह आनन्दित कर सकेंगे जिस तरह इन्द्र अपनी वर्षा से ग्रीष्म के ताप से पीड़ित जंगलों को पुनः जीवन प्रदान करते हैं? यद्यपि हम जानती हैं कि त्याग से ही सर्वोच्च सुख प्राप्त होता है किन्तु हम कृष्ण को पाने की आशा इसलिए नहीं त्याग पातीं क्योंकि सारी व्रजभूमि में उनके चरणकमलों के चिह्न अब भी अंकित हैं, जो हमें उनकी मन्द चाल, उदार मुस्कानों तथा मधुर बातों का स्मरण कराते हैं। इन सबों ने हमारे चित्त को चुरा लिया है।”

ऐसा कहकर गोपियाँ जोर जोर से कृष्ण के नामों का उच्चारण यह कहकर करने लगीं, “हे गोविन्द! आकर हमारे कष्टों को दूर करो।” तब उद्धव ने ऐसे कथनों द्वारा उन्हें सान्त्वना दी जिनसे

उनकी वियोग-पीड़ा दूर हो गई और वे उद्धव को श्रीकृष्ण से अभिन्न मानकर उनकी पूजा करने लगीं।

उद्धव ब्रज प्रदेश में कई मास रुके रहे और वहाँ के वासियों को कृष्ण के विषय में तरह तरह से स्मरण कराकर उन्हें आनन्दित करते रहे। कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम का विस्तार देखकर अत्यन्त प्रसन्न-मन उद्धव ने घोषित किया, “इन गोपियों ने कृष्ण के प्रति अनन्यप्रेम का पद प्राप्त कर अपने अपने जीवन को सफल बना लिया है। निस्सन्देह इनके आगे ब्रह्मा भी निकृष्ट लगते हैं। कृष्ण के वक्षस्थल पर निवास करने वाली साक्षात् लक्ष्मी जी भी वह कृपा प्राप्त नहीं कर सकीं जो इन गोपियों ने रासनृत्य के समय प्राप्त की थी जिसमें कृष्ण ने अपनी विशाल भुजाओं से उनका आलिंगन किया था। तो भला अन्य स्त्रियों के बारे में क्या कहा जा सकता है? निस्सन्देह मैं एक झाड़ी या लता का भी जन्म लेकर अपने को परम धन्य मानूँगा जिससे इन गोपियों की चरण-रज से स्पर्श प्राप्त कर सकूँ।”

अन्त में उद्धव ने मथुरा वापस जाने के लिए नन्द महाराज तथा अन्य गोपों से अनुमति माँगी। नन्द ने उन्हें अनेक उपहार दिये और कृष्ण का सदैव स्मरण करने की शक्ति प्रदान करने के लिए उद्धव से प्रार्थना की। मथुरा लौट कर उद्धव ने बलराम, कृष्ण तथा राजा उग्रसेन को नन्द महाराज द्वारा भेजे गये उपहार प्रदान किये और उन सबों से ब्रज के सारे अनुभव कह सुनाये।

श्रीशुक उवाच

तं वीक्ष्य कृषानुचरं ब्रजस्त्रियः

प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ।

पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्-

मुखारविन्दं परिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥

सुविस्मिताः कोऽयमपीव्यदर्शनः

कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।

इति स्म सर्वाः परिवव्रुत्सुका-

स्तमुत्तमःश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तम्—उस; वीक्ष्य—देखकर; कृष्ण-अनुचरम्—भगवान् कृष्ण के अनुचर ( उद्धव ) को; ब्रज-स्त्रियः—ब्रज की स्त्रियाँ; प्रलम्ब—नीचे तक; बाहुम्—बाँहों को; नव—नवीन; कञ्ज—कमल सदृश; लोचनम्—आँखों को; पीत—पीला; अम्बरम्—वस्त्र पहने; पुष्कर—कमल की; मालिनम्—माला पहने; लसन्—शोभायमान; मुख—मुख; अरविन्दम्—कमल सदृश; परिमृष्ट—परिष्कृत किया; कुण्डलम्—कान का कुण्डल; सु-विस्मिताः—अत्यधिक चकित; कः—कौन; अयम्—यह; अपीव्य—सुन्दर; दर्शनः—दर्शन; कुतः—कहाँ से; च—तथा; कस्य—किसका; अच्युत—कृष्ण का; वेष—वस्त्र धारण किये; भूषणः—तथा आभूषण; इति—इस प्रकार; स्म—निस्सन्देह; सर्वाः—सभी; परिवव्रुः—

घिरे हुए; उत्सुका:—उत्सुक; तम्—उसको; उत्तमः—श्लोक—भगवान् कृष्ण का, जिनकी प्रशंसा सुन्दर श्लोकों द्वारा की जाती है; पद-अम्बुज—चरणकमल की; आश्रयम्—शरण में आये हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ब्रज की ललनाएँ कृष्ण के अनुचर को देखकर चकित हो गईं। उसके हाथ लम्बे लम्बे थे और आँखें नये खिले कमल जैसी थीं। वह पीत वस्त्र धारण किये था, गले में कमल की माला थी तथा अत्यन्त परिष्कृत किये हुए कुण्डलों से चमकता उसका मुखमण्डल कमल जैसा था। गोपियों ने पूछा, “यह सुन्दर पुरुष कौन है? यह कहाँ से आया है? यह किसकी सेवा करता है? यह तो कृष्ण के वस्त्र और आभूषण पहने है!” यह कहकर गोपियाँ उद्धव के चारों ओर उत्सुकता से एकत्र हो गईं जिनका आश्रय भगवान् उत्तमश्लोक श्रीकृष्ण के चरणकमल थे।

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं  
सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ।  
रहस्यपृच्छन्नपविष्टमासने  
विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

तम्—उसको; प्रश्रयेण—विनयपूर्वक; अवनताः—झुकाकर ( गोपियाँ ); सु—उचित रीति से; सत्-कृतम्—आदर किया; स-व्रीड—लज्जा सहित; हास—तथा हँसते हुए; ईक्षण—चितवनों; सूनृत—मधुर शब्द; आदिभिः—इत्यादि से; रहसि—एकान्त में; अपृच्छन्—पूछा; उपविष्टम्—बैठा हुआ; आसने—आसन पर; विज्ञाय—समझ कर; सन्देश-हरम्—संदेशवाहक; रमा-पतेः—लक्ष्मी के स्वामी का।

विनयपूर्वक अपना शीश झुकाते हुए गोपियों ने अपनी लजीली मुसकराती चितवनों तथा मधुर शब्दों से उद्धव का उचित रीति से सम्मान किया। वे उन्हें एकान्त स्थान में ले गईं, उन्हें आराम से बैठाया और तब उन्हें लक्ष्मीपति कृष्ण का संदेशवाहक मान कर उनसे प्रश्न करने लगीं।

तात्पर्य : साध्वी गोपियाँ कृष्ण के यहाँ से संदेशवाहक आया देखकर सजीव हो उठीं। जैसाकि वृन्दावन के प्रवास काल में उद्धव पाएँगे, ये अनुपम गोपियाँ अपने प्रिय कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सोच सकीं।

जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ।  
भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान्प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥

## शब्दार्थ

जानीमः—हम जानती हैं; त्वाम्—तुमको; यदु-पतेः—यदुओं के प्रमुख का; पार्षदम्—निजी संगी; समुपागतम्—यहाँ आया; भर्त्रा—अपने स्वामी द्वारा; इह—यहाँ; प्रेषितः—भेजा हुआ; पित्रोः—अपने माता-पिता का; भवान्—आप; प्रिय—सन्तोष, सुख; चिकीर्षया—देने के लिए इच्छुक।

[ गोपियों ने कहा ] : हम जानती हैं कि आप यदुश्रेष्ठ कृष्ण के निजी पार्षद हैं और अपने उस श्रेष्ठ स्वामी के आदेश से यहाँ आये हैं, जो अपने माता-पिता को सुख प्रदान करने के इच्छुक हैं।

अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ।

स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥

## शब्दार्थ

अन्यथा—नहीं तो; गो-व्रजे—चरागाह में; तस्य—उसका; स्मरणीयम्—स्मरण करने योग्य; न चक्ष्महे—हम नहीं देखतीं; स्नेह—स्नेह की; अनुबन्धः—आसक्ति; बन्धूनाम्—सम्बन्धियों के लिए; मुनेः—मुनियों के लिए; अपि—भी; सु-दुस्त्यजः—छोड़ पाना मुश्किल।

अन्यथा हमें और कुछ भी ऐसा नहीं दीखता जिसे वे व्रज के इन चरागाहों में स्मरणीय समझते होंगे। निस्सन्देह एक मुनि के लिए भी अपने पारिवारिक जनों का स्नेह-बंधन तोड़ पाना कठिन होता है।

अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् ।

पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत्सुमनःस्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥

## शब्दार्थ

अन्येषु—अन्यों के प्रति; अर्थ—किसी उद्देश्य से; कृता—प्रकट; मैत्री—मित्रता; यावत्—जब तक; अर्थ—उद्देश्य ( जिसे कोई पूरा करता है ); विडम्बनम्—बहाना; पुम्भिः—मनुष्यों द्वारा; स्त्रीषु—स्त्रियों के लिए; कृता—दिखलाया गया; यद्वत्—जितना; सुमनःसु—फूलों के लिए; इव—सदृश; षट्-पदैः—भौरों द्वारा।

किसी अन्य के प्रति, जो पारिवारिक सदस्य नहीं है, दिखलाई जाने वाली मित्रता स्वार्थ से प्रेरित होती है। अतः यह तो एक बहाना होता है, जो तब तक चलता है जबतक किसी का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। ऐसी मित्रता वैसी ही है, जिस तरह कि स्त्रियों के प्रति पुरुषों की या फूलों के प्रति भौरों की रुचि।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यहाँ व्याख्या करते हैं कि फूलों की ही तरह आकर्षक स्त्रियों में सौन्दर्य, सुगन्ध, सकोमलता, लावण्य इत्यादि होता है। जिस तरह भौरों एक फूल का मधु एक ही बार पीकर उसे छोड़कर दूसरे फूल पर चले जाते हैं उसी तरह मनचले व्यक्ति सुन्दर तथा पतिपरायणा स्त्रियों को छोड़कर अन्य विषय-भोग में लग जाते हैं। यहाँ पर गोपियाँ ऐसी प्रवृत्ति की

निन्दा करती हैं क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना मन पूर्णतया दे डाला था। गोपियाँ तो भगवान् कृष्ण के सुख के लिए ही अपना आकर्षण दिखलाना चाहती थीं और विरहपीड़ा में वे अपने साथ कृष्ण की मित्रता के उद्देश्यों पर प्रश्न-चिन्ह लगा रही थीं।

ये तो भगवान् की दिव्य लीलाएँ हैं। भगवान् कृष्ण तथा गोपियाँ दोनों ही आध्यात्मिक प्रेम-व्यापार में संलग्न पूर्ण मुक्तात्माएँ हैं। इसके विपरीत हमारे तथाकथित प्रेम-व्यापार, जो कि आध्यात्मिक जगत में पूर्ण प्रेम सम्बन्ध के विकृत प्रतिबिम्ब हैं, काम, लोभ, मद इत्यादि के द्वारा दूषित होते रहते हैं। समस्त मुक्तात्माओं की तरह गोपियाँ तथा निस्संदेह भगवान् कृष्ण स्वयं भी इन अधम गुणों से नित्य मुक्त हैं और उनके प्रखर प्रेम-व्यापार केवल अनन्य भक्ति द्वारा प्रेरित हैं।

निःस्वम् त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ।  
अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

निःस्वम्—सम्पत्तिविहीन को; त्यजन्ति—छोड़ देती हैं; गणिकाः—वेश्याएँ; अकल्पम्—अदक्ष; नृ-पतिम्—राजा को; प्रजः—नागरिक; अधीत-विद्याः—जिन्होंने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है; आचार्यम्—शिक्षक को; ऋत्विजः—पुरोहितगण; दत्त—(यज्ञकर्त्ता द्वारा) दे चुकने पर; दक्षिणम्—दक्षिणा, भेंट।

वेश्याएँ निर्धन व्यक्ति को, प्रजा अयोग्य राजा को, शिक्षा पूरी होने पर विद्यार्थी अपने शिक्षक को तथा पुरोहितगण दक्षिणा पाने के बाद यज्ञ करने वाले व्यक्ति को छोड़ जाते हैं।

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ।  
दग्धं मृगास्तथारण्यं जारा भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

खगाः—पक्षीगण; वीत—रहित; फलम्—फलों से; वृक्षम्—वृक्षको; भुक्त्वा—खाने के बाद; च—तथा; अतिथयः—अतिथिगण; गृहम्—घर को; दग्धम्—जले हुए; मृगाः—पशुगण; तथा—उसी प्रकार; अरण्यम्—जंगल को; जाराः—उपपत्ति; भुक्त्वा—भोग करने के बाद; रताम्—आकृष्ट; स्त्रियम्—स्त्री को।

फल न रहने पर पक्षी वृक्ष को, भोजन करने के बाद अतिथि घर को, जंगल जल जाने पर पशु जंगल को तथा प्रेमी के प्रति आकृष्ट रहने के बावजूद भी स्त्री का भोग कर लेने पर प्रेमी उसका परित्याग कर देते हैं।

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ।  
कृष्णादूते समायाते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥

गायन्त्यः प्रीयकर्माणि रुदन्त्यश्च गतहियः ।

तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ १० ॥

### शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; गोप्यः—गोपियाँ; हि—निस्सन्देह; गोविन्दे—गोविन्द में; गत—केन्द्रित करके; वाक्—वाणी; काय—शरीर; मानसः—तथा अपने मन; कृष्ण-दूते—कृष्ण के दूत; समायाते—आकर उनके साथ हो लेने वाले; उद्धवे—उद्धव में; त्यक्त—छोड़कर; लौकिकाः—सांसारिक कार्य; गायन्त्यः—गाती हुई; प्रिय—अपने प्रिय के; कर्माणि—कार्यकलापों के विषय में; रुदन्त्यः—फूट फूट कर रोती हुई; च—तथा; गत-हियः—सारी लाज छोड़कर; तस्य—उसकी; संस्मृत्य संस्मृत्य—बार-बार याद करके; यानि—जो; कैशोर—किशोरावस्था; बाल्ययोः—तथा बालपन की।

इस तरह बोलती हुई गोपियों ने जिनके वचन, शरीर तथा मन भगवान् गोविन्द के प्रति पूर्णतया समर्पित थे, अपना नैतिक कार्य करना छोड़ दिया क्योंकि अब कृष्णदूत श्री उद्धव उनके बीच आया था। वे अपने प्रिय कृष्ण के बाल्यकाल तथा किशोरावस्था की लीलाओं का अविरत स्मरण करके उनका गुणगान करने लगीं और लाज छोड़कर फूट-फूटकर रोने लगीं।

तात्पर्य : यहाँ बाल्ययोः शब्द सूचित करता है कि गोपियाँ अपने बचपन से कृष्ण से प्रेम करती थीं। अतः यद्यपि सामाजिक रीति के अनुसार वे अन्य किसी से अपना प्रेम प्रकट नहीं कर सकती थीं फिर भी वे सारी बाहरी बातें भूल गईं और कृष्णदूत उद्धव के समक्ष खुलकर रोने लगीं।

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।

प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

### शब्दार्थ

काचित्—कोई ( एक गोपी ); मधु-करम्—भौर को; दृष्ट्वा—देखकर; ध्यायन्ती—ध्यान में मग्न; कृष्ण-सङ्गमम्—कृष्ण के साथ अपने सान्निध्य के विषय में; प्रिय—अपने प्रिय द्वारा; प्रस्थापितम्—भेजे गये; दूतम्—दूत को; कल्पयित्वा—कल्पना करते हुए; इदम्—यह; अब्रवीत्—बोली।

कोई एक गोपी जब कृष्ण के साथ अपने पूर्व सान्निध्य का ध्यान कर रही थी, तो उसने अपने सामने एक भौरा देखा और उसे लगा कि यह उसके प्रियतम द्वारा भेजा गया कोई दूत है। अतः वह इस प्रकार बोली।

तात्पर्य : इस श्लोक में श्रीमती राधारानी को काचित् “कोई एक गोपी” कहकर उल्लेख हुआ है। यह सिद्ध करने के लिए कि यह “कोई” वास्तव में श्रीमती राधारानी ही हैं, श्रील जीव गोस्वामी अग्नि पुराण से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं।

गोप्यः प्रपच्छुरुषसि कृष्णानुचरमुद्धवम् ।

हरिलीला विहारांश्च तत्रैकां राधिकां विना ॥

राधा तद्भावसंलीना वासनाया विरामिता ।

सखीभिः साभ्यधाच्छुद्धविज्ञानगुणजृम्भितम् ॥

इज्यान्तेवासिनां वेदचरमांशविभावनै ।

“भोर में गोपियों ने कृष्णदास उद्धव से भगवान् की लीलाओं एवं आमोद-प्रमोद के विषय में पूछताछ की। कृष्ण के विचार में लीन एकमात्र श्रीमती राधारानी ही इस बातचीत से अलग-थलग बनी रही। तब वृन्दावनवासियों द्वारा पूजित राधा अपनी सखियों के बीच बोलीं। उनके शब्द विशुद्ध दिव्य ज्ञान से पूर्ण थे और वेदों के सर्वश्रेष्ठ अंश को व्यक्त करने वाले थे।

भगवद्गीता (१५.१५) में भगवान् कृष्ण कहते हैं—वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः—सभी वेदों द्वारा मुझे ही जानना चाहिए। कृष्ण को जानना कृष्ण से प्रेम करना है। इस तरह राधारानी ने अपने ही दृष्टान्त तथा शब्दों से कृष्ण के प्रति अपना चरम प्रेम उद्घाटित किया।

अग्नि पुराण से उपर्युक्त श्लोक उद्धृत करने के बाद श्रील जीव गोस्वामी नृसिंह-तापनी उपनिषद् से भी (पूर्व खण्ड २.४) उद्धृत करते हैं—यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्म-वादिनश्च—सारे देवता तथा मुक्ति के इच्छुक सारे दिव्य दार्शनिक भगवान् को ही नमस्कार करते हैं। हमें चाहिए कि हम भी ऐसा ही करें।

गोष्युवाच

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशद्भिः सपत्न्याः

कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्रुभिर्नः ।

वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं

यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीहक् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

गोपी उवाच—गोपी ने कहा; मधुप—हे भौरै; कितव—ठग के; बन्धो—हे मित्र; मा स्पृश—मत छूना; अङ्घ्रिम्—पाँवों को; सपत्न्याः—हमारी प्रतियोगिनी प्रेमिका का; कुच—स्तन; विलुलित—गिरी हुई; माला—माला से; कुङ्कुम—लाल रंग का अंगराग; श्रुभिः—मूछों से; नः—हमारे; वहतु—लाने दो; मधु-पतिः—मधुवंश के स्वामी; तत्—उसका; मानिनीनाम्—स्त्रियों के लिए; प्रसादम्—कृपा या दया; यदु-सदसि—यदुओं की राजसभा में; विडम्ब्यम्—उपहास का पात्र; यस्य—जिसका; दूतः—दूत; त्वम्—तुम; ईहक्—ऐसा।

गोपी ने कहा : हे भौरै, हे छलिये के मित्र, अपनी उन मूछों से मेरे पाँवों को मत छूना जो उस कुंकुम से लेपित हैं, जो कृष्ण की माला में तब लग जाता था जब वह मेरी सौत के स्तनों द्वारा मर्दित होती थी। कृष्ण अब मथुरा की स्त्रियों को तुष्ट करें। जो व्यक्ति तुम जैसे दूत को भेजेगा



वह यदुओं की सभा में निश्चित रूप से उपहास का पात्र बनेगा।

तात्पर्य : श्रीमती राधारानी भौरै को कृष्ण का दूत समझकर उसे उलाहना देते हुए परोक्षतः कृष्ण को उलाहना दे रही थीं। उन्होंने भौरै को मधुप अर्थात् “फूलों के मधु को पीने वाला” कहा और कृष्ण को मधुपति अर्थात् “मधु का राजा।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि यह श्लोक तथा आगे के नौ श्लोक प्रेमिका द्वारा कहे गये दस प्रकार के उपालम्भों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस श्लोक में प्रजल्प के गुणों का वर्णन है जैसाकि श्रील रूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि से (१४.१८२) उदाहरण देते हुए निम्नलिखित श्लोक में बतलाया है—

असूयेर्ष्यामिदयुजा योऽवधीरणमुद्रया।

प्रियस्याकौशलोद्गारः प्रजल्पः स तु कीर्त्यते ॥

“प्रजल्प वह कथन है, जो किसी प्रेमी की कार्य-अकुशलता की निन्दा करता है, जिसमें अनादर व्यक्त होता है। यह ईर्ष्या, द्वेष तथा अभिमान के भाव में कहा जाता है।” श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि कितवबन्धो ईर्ष्या का; सपत्न्यः से लेकर नः तक का पद द्वेष का; मा स्पृश अंघ्रिम अभिमान का; वहतु से लेकर प्रसादम् तक का पद अनादर का और यदु सदसि से लेकर श्लोक के अंत तक का पद कृष्ण द्वारा राधारानी के साथ अकुशलतापूर्ण व्यवहार को सूचित करते हैं।

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा

सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भवाद्दक् ।

परिचरति कथं तत्पादपद्मं नु पद्मा

ह्यपि बत हतचेता ह्युत्तमःश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥

#### शब्दार्थ

सकृत्—एक बार; अधर—होठों का; सुधाम्—अमृत; स्वाम्—अपने; मोहिनीम्—मोहते हुए; पाययित्वा—पिलाकर; सुमनसः—फूल; इव—सदृश; सद्यः—एकाएक; तत्यजे—परित्याग कर दिया; अस्मान्—हमको; भवाद्दक्—तुम्हारी तरह; परिचरति—सेवा करता है; कथम्—क्यों; तत्—उसका; पद-पद्मम्—चरणकमल; नु—मुझे आश्चर्य होता है; पद्मा—लक्ष्मी; हि अपि—निस्सन्देह, क्योंकि; बत—हाय; हत—चुराया गया; चेताः—उसका मन; हि—निश्चय ही; उत्तमः—श्लोक—कृष्ण के; जल्पैः—झूठे वचनों से।

केवल एक बार अपने होठों का मोहक अमृत पिलाकर कृष्ण ने सहसा उसी तरह हमारा परित्याग कर दिया है, जिस तरह तुम किसी फूल को तुरन्त छोड़ देते हो। तो फिर यह कैसे

सम्भव है कि देवी पद्मा स्वेच्छा से उनके चरणकमलों की सेवा करती हैं? हाय! इसका उत्तर यही हो सकता है कि उनका चित्त उनके छलपूर्ण शब्दों द्वारा चुरा लिया गया है।

तात्पर्य : इस श्लोक में भी श्रीमती राधारानी श्रीकृष्ण की तुलना भौरै से करती जा रही हैं और दुखी होने के कारण वे कहती हैं कि लक्ष्मी द्वारा उनके चरणकमलों की निरन्तर सेवा किये जाने का कारण यही हो सकता है कि वे कृष्ण के बहकावे में आ गई हों। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार श्रीमती राधारानी का यह कथन परिजल्प का उदाहरण है, जैसाकि श्री उज्ज्वल-नीलमणि (१४.१८४) में वर्णित है—

प्रभोर्निर्दयताशाठ्यचापल्याद्युपपादनात् ।

स्वविचक्षणताव्यक्तिर्भग्या स्यात् परिजल्पितम् ॥

“ परिजल्प वह कथन है, जो विविध युक्तियों द्वारा किसी की चतुरता को दिखलाता है और जिससे उसके स्वामी की क्रूरता, द्वैतता, अविश्वसनीयता इत्यादि का पता चलता है।”

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूना-

मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ।

विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः

क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥

#### शब्दार्थ

किम्—क्यों; इह—यहाँ; बहु—अधिक; षट्-अङ्घ्रे—हे षटपद; गायसि—गा रहे हो; त्वम्—तुम; यदूनाम्—यदुओं के; अधिपतिम्—स्वामी के विषय में; अगृहाणाम्—बिना घर-बार वाले; अग्रतः—समक्ष; नः—हमारे; पुराणम्—पुरानी; विजय—अर्जुन के; सख—मित्र का; सखीनाम्—मित्रों के लिए; गीयताम्—गाया जाना चाहिए; तत्—उसकी; प्रसङ्गः—कथाएँ; क्षपित—दूर हुई; कुच—जिनके स्तनों की; रुजः—पीड़ा; ते—वे; कल्पयन्ति—प्रदान करेंगी; इष्टम्—मनवांछित दान; इष्टाः—अपनी प्रियाओं को।

हे भौरै, तुम घर-बार से रहित हम लोगों के समक्ष यदुओं के स्वामी के विषय में इतना अधिक क्यों गाये जा रहे हो? ये कथाएँ हमारे लिए अब पुरानी हो चुकी हैं। अच्छा हो कि तुम अर्जुन के उस मित्र के विषय में उसकी उन नई सखियों के समक्ष जाकर गाओ जिनके स्तनों की दाहक इच्छा( कामेच्छा ) को उसने शान्त कर दिया है। वे स्त्रियाँ अवश्य ही तुम्हें मनवांछित भिक्षा-दान देंगी।

तात्पर्य : राधारानी अगृहाणाम् अग्रतो नः शब्दों से शोक प्रकट करती हैं कि यद्यपि उन्होंने तथा

अन्य गोपियों ने माधुर्य भाव में कृष्ण से प्रेम करने के लिए अपने घरों का परित्याग कर दिया किन्तु भगवान् उन्हें छोड़कर यदुओं की महानगरी के राजकुमार बन गये। *विजय* शब्द का अर्थ “विजयी अर्जुन” के अतिरिक्त श्रीकृष्ण का भी सूचक है क्योंकि वे सदैव विजयी होते रहे हैं। इसी तरह *पुराणम्* शब्द “पुराना” अर्थ बतलाने के अतिरिक्त यह भी सूचित करता है कि इसी नाम के प्राचीन वैदिक शास्त्रों में श्रीकृष्ण का गुणगान होता है।

इस श्लोक में राधारानी के भाव में द्वेषपूर्ण क्रोध का बीज पाया जाता है, जो कृष्ण के प्रति दिखने वाली उपेक्षा तथा कृष्ण की ओर लगी हुई व्यंग्यात्मक तिरछी चितवन से उत्पन्न होता है। इस तरह यह श्लोक *उज्ज्वल नीलमणि* (१४.१८६) में आये *विजल्प* के वर्णन से मेल खाता है—

*व्यक्तयासूयया गूढमानमुद्रान्तरालया ।*

*अघद्विषि कटाक्षोक्तिर्विजल्पो विदुषां मतः ॥*

“विद्वानों के अनुसार विजल्प कटूक्ति है, जो अघ का वध करने वाले को सम्बोधित है, जो स्पष्ट रूप से द्वेष को व्यक्त करती है और उसी के साथ ही क्रोधयुक्त अभिमान को भी इंगित करती है।”

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तदुरापाः

कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ।

चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का

अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमःश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥

#### शब्दार्थ

दिवि—स्वर्ग में; भुवि—पृथ्वी में; च—तथा; रसायाम्—तथा रसातल में; काः—क्या; स्त्रियः—स्त्रियाँ; तत्—उसके द्वारा; दुरापाः—अप्राप्य; कपट—छल; रुचिर—आकर्षक; हास—हँसी से युक्त; भ्रू—भौंहें; विजृम्भस्य—टेढ़ी; याः—जो; स्युः—बन जाती हैं; चरण—पैरों की; रजः—धूल; उपास्ते—पूजा करती है; यस्य—जिसकी; भूतिः—लक्ष्मी, नारायण-पत्नी; वयम्—हम; का—कौन; अपि च—फिर भी; कृपण-पक्षे—बेचारे दीनों के लिए; हि—निस्सन्देह; उत्तमः-श्लोक—भगवान् जिनका गुणगान उत्तम स्तुतियों द्वारा किया जाता है; शब्दः—नाम।

उन्हें स्वर्ग, पृथ्वी या पाताल में कौन-सी स्त्रियाँ अनुपलब्ध हैं? वे केवल अपनी भौंहों को तिरकी करके छलपूर्ण आकर्षण से हँसते हैं, तो वे सब उनकी हो जाती हैं। लक्ष्मीजी तक उनके चरण-रज की पूजा करती हैं, तो उनकी तुलना में हमारी क्या बिसात है? किन्तु जो दीन-दुखियारी हैं, वे कम से कम उनका उत्तमश्लोक नाम तो ले ही सकती हैं!

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि एक निराश प्रेमिका की भावनाओं को व्यक्त करने

वाली राधारानी की उक्ति श्रीकृष्ण के प्रति उस प्रेम-प्रगाढ़ता को व्यक्त करने वाली है, जो लक्ष्मीजी को भी मात करने वाली है। जहाँ सारी गोपियाँ अपने सौन्दर्य, स्वभाव इत्यादि में श्रीकृष्ण से पूर्ण सामञ्जस्य प्राप्त करने वाली हैं वहाँ श्रीमती राधारानी का विशिष्ट स्थान है। त्यक्त अवस्था में राधारानी कृष्ण को संकेत करती हैं, “तुम इसलिए उत्तमश्लोक कहलाते हो क्योंकि दीनों तथा पतितों पर दयालु हो किन्तु जब तुम मुझ पर दयालु होगे तभी तुम इस प्रतिष्ठित नाम के योग्य होगे।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी संकेत करते हैं कि इस श्लोक में श्रीमती राधारानी अभिमान से जनित ईर्ष्या (डाह) व्यक्त करती हैं, वे कृष्ण पर छलिया होने का आरोप करती हैं और उनके आचरण में खोट निकालती हैं। इस तरह इस श्लोक में उज्जल्प का प्रयोग हुआ है, जिसका वर्णन उज्ज्वल नीलमणि के निम्नलिखित श्लोक (१४.१८८) में पाया जाता है—

हरेः कुहकताख्यानं गर्वगर्भितयेर्ष्या ।

सासूयश्च तदाक्षेपो धीरैरुज्जल्प ईर्यते ॥

“गर्वजनित ईर्ष्या के भाव में भगवान् हरि के द्वैतपूर्ण स्वभाव की घोषणा और साथ में उनके प्रति द्वेषपूर्ण कहे गये अपमानजनक शब्दों को विद्वानजन उज्जल्प कहते हैं।”

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चातुकारै-

रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।

स्वकृत इह विषृष्टापत्यपत्यन्यलोका

व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

विसृज—जाने दें; शिरसि—तुम्हारे सिर पर; पादम्—मेरा पाँव; वेद्मि—जानती हूँ; अहम्—मैं; चाटु-कारैः—चापलूसी भरे शब्दों से; अनुनय—समझौता करने की कला में; विदुषः—प्रवीण; ते—तुम्हारा; अभ्येत्य—जानकर; दौत्यैः—दूत की तरह कार्य करके; मुकुन्दात्—कृष्ण से; स्व—उनके अपने; कृते—लिए, हेतु; इह—इस जीवन में; विसृष्ट—परित्यक्त; अपत्य—बच्चे; पती—पति; अन्य-लोकाः—अन्य सारे लोग; व्यसृजत्—उसने छोड़ दिया है; अकृत-चेताः—कृतघ्न; किम् नु—क्योंकि; सन्धेयम्—क्या मैं समझौता कर लूँ; अस्मिन्—उससे।

तुम अपने सिर को मेरे पैरों से दूर ही रखो। मुझे पता है कि तुम क्या कर रहे हो। तुमने बहुत ही दक्षतापूर्वक मुकुन्द से कूटनीति सीखी है और अब चापलूसी भरे शब्द लेकर उनके दूत बनकर आये हो। किन्तु उन्होंने तो उन बेचारियों को ही छोड़ दिया है जिन्होंने उनके लिए अपने बच्चों, पतियों तथा अन्य सम्बन्धियों का परित्याग किया है। वे निपट कृतघ्न हैं। तो मैं अब उनसे

समझौता क्यों करूँ ?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार इस श्लोक में सञ्जल्प के गुणों का उदाहरण प्रस्तुत हुआ है, जिसका वर्णन श्रील रूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि (१४.१९०) में निम्नवत् किया है—

सोल्लुण्ठया गहनया कयाप्याक्षेपमुद्रया ।

तस्यकृतज्ञाताद्युक्तिः सञ्जल्पः कथितो बुधै ॥

“विद्वानजन सञ्जल्प को वह उक्ति बतलाते हैं जिसमें प्रेमी की अकृतज्ञता आदि के प्रति व्यंग्यात्मक आक्षेप तथा अपमानसूचक संकेत द्वारा भर्त्सना की जाती है।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि आदि शब्द प्रेमी की कठोर हृदयता, शत्रुतापूर्ण मनोभाव तथा प्रेम के पूर्ण अभाव की अनुभूतियों का सूचक है।

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा

स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।

बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद्ध्वाङ्क्षवद्य-

स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

मृगयुः—शिकारी; इव—सदृश; कपि—बन्दरों के; इन्द्रम्—राजा; विव्यधे—बाँध दिया; लुब्ध-धर्मा—कूर शिकारी जैसा आचरण करते हुए; स्त्रियम्—स्त्री ( शूर्पणखा ) को; अकृत—बना दिया; विरूपाम्—विकृत; स्त्री—स्त्री ( सीता देवी ) द्वारा; जितः—जीता गया; कामयानाम्—कामेच्छा से प्रेरित; बलिम्—राजा बलि को; अपि—भी; बलिम्—उसका सम्मान, भाग; अत्त्वा—खाकर; अवेष्टयत्—बाँध लिया; ध्वाङ्क्षवत्—कौवे की तरह; यः—जो; तत्—इसलिए; अलम्—जाने भी दो; असित—श्याम कृष्ण से; सख्यैः—सभी प्रकार की मित्रता से; दुस्त्यजः—छोड़ पाना असम्भव; तत्—उसके विषय में; कथा—कथा का; अर्थः—विस्तार।

शिकारी की तरह उन्होंने कपिराज को बाणों से निर्दयतापूर्वक बाँध दिया। चूँकि वे एक स्त्री द्वारा जीते जा चुके थे इसलिए उन्होंने एक दूसरी स्त्री को, जो उनके पास कामेच्छा से आई थी कुरूप कर दिया। यही नहीं, बलि महाराज की बलि खाकर भी उन्होंने उन्हें रस्सियों से बाँध दिया मानो वे कोई कौवा हों। अतः हमें इस श्यामवर्ण वाले लड़के से सारी मित्रता छोड़ देनी चाहिए भले ही हम उसके विषय में बातें करना बन्द न कर पायें।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद भगवान् कृष्ण में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार बतलाते हैं, “ [ श्रीमती राधारानी ने भौरै से कहा ] : “रे दीन-दूत! तुम तो अल्पज्ञ दास हो। तुम कृष्ण के विषय में अधिक नहीं जानते—वे न केवल इस जीवन में अपितु अपने पूर्वजन्मों में भी कितने कृतघ्न तथा कठोर-हृदय

रहे हैं। हमने अपनी दादी पौर्णमासी से यह सुना है। उसने हमें बताया है कि कृष्ण इस जन्म से पूर्व क्षत्रियकुल में जन्मे थे और रामचन्द्र कहलाते थे। उस जन्म में इन्होंने अपने मित्र के शत्रु बाली का वध एक क्षत्रिय की तरह न करके एक शिकारी की तरह किया। शिकारी सुरक्षित स्थान में छिपे रहकर पशु का सामना किये बिना ही उसका वध करता है। अतः एक क्षत्रिय होने के नाते भगवान् रामचन्द्र को बाली से आमने-सामने युद्ध करना चाहिए था। किन्तु अपने मित्र के उकसाने पर उन्होंने एक पेड़ के पीछे से उसे मार डाला। इस तरह वे क्षत्रिय-धर्म से विचलित हुए। यही नहीं, वे सीता के सौन्दर्य के प्रति इतने आकृष्ट थे कि उन्होंने रावण की बहन शूर्पणखा के नाक-कान काटकर उसे कुरूप बना दिया। शूर्पणखा ने उनसे *घनिष्ट सम्बन्ध* का प्रस्ताव रखा था और क्षत्रिय होने के नाते उन्हें उसको तुष्ट करना चाहिए था। किन्तु वे ऐसे पत्नी-दास थे कि वे सीतादेवी को नहीं भुला पाये और शूर्पणखा को कुरूप कर दिया। क्षत्रिय रूप में इस जन्म के पूर्व उन्होंने वामनदेव नामक ब्राह्मण बालक के रूप में जन्म लिया था और बलि महाराज से दान माँगा था। बलि इतने वदान्य थे कि उन्होंने अपना सर्वस्व दे डाला फिर भी वामनदेव के रूप में कृष्ण ने कृतघ्नतापूर्वक उन्हें कौवे की तरह बन्दी बनाकर पाताल लोक में धकेल दिया। हम सभी जानती हैं कि कृष्ण कितने कृतघ्न हैं। किन्तु एक कठिनाई है—इतना क्रूर तथा पाषाण-हृदय होने पर भी हमारे लिए उनके विषय में बातें करना छोड़ पाना अतीव कठिन है।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि राधारानी की यह *वक्तृता अवजल्प* है जैसाकि रूप गोस्वामी ने उज्वल नीलमणि के निम्नलिखित श्लोक (१४.१९२) में वर्णन किया है—

*हरौ काठिन्य कामित्वधौत्याद् आसक्त्ययोग्यता।*

*यत्र सेष्याभियेवोक्ता सोऽवजल्पः सतां मतः ॥*

“साधु पुरुष इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जब कोई प्रेमिका ईर्ष्या तथा भय से बाध्य होकर घोषित करती है कि भगवान् हरि अपनी रुक्षता, कामुकता तथा बेईमानी के कारण उसकी आसक्ति (रति) के अयोग्य हैं, तो यह *उक्ति अवजल्प* कहलाती है।”

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-

सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।  
 सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना  
 बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्या चरन्ति ॥ १८ ॥

### शब्दार्थ

यत्—जिसके; अनुचरित—निरन्तर किये गये कार्य; लीला—ऐसी लीलाओं के; कर्ण—कानों के लिए; पीयूष—अमृत की; विप्रुट्—एक बूँद का; सकृत्—केवल एक बार; अदन—पान; विधूत—पूर्णतया विलग; द्वन्द्व—द्वैत का; धर्माः—उनकी रुचियाँ; विनष्टाः—नष्ट-भ्रष्ट; सपदि—तुरन्त; गृह—अपने घर; कुटुम्बम्—तथा परिवार को; दीनम्—बेचारी; उत्सृज्य—त्याग कर; दीनाः—स्वयं दीन बनकर; बहवः—अनेक व्यक्ति; इह—यहाँ ( वृन्दावन में ); विहङ्गाः—पक्षियों ( की तरह ); भिक्षु—भीख माँगने की; चर्याम्—आजीविका; चरन्ति—अपनाते हैं।

कृष्ण द्वारा नियमित रूप से की जाने वाली लीलाओं के विषय में सुनना कानों के लिए अमृत के समान है। जो लोग इस अमृत की एक बूँद का एक बार भी आस्वादन करते हैं, उनकी भौतिक द्वैत के प्रति अनुरक्ति विनष्ट हो जाती है। ऐसे अनेक लोगों ने एकाएक अपने भाग्यहीन घरों तथा परिवारों को त्याग दिया है और वे स्वयं दीन बनकर पक्षियों की तरह इधर-उधर घूमते-फिरते हुए जीवन-निर्वाह के लिए भीख माँग-माँग कर वृन्दावन आये हैं।

तात्पर्य : भौतिक द्वन्द्व इस गलत सोच पर आधारित है, “यह मेरा है और वह तेरा है” या “यह हमारा देश है और वह तेरा है।” अथवा “यह मेरा परिवार है और वह तेरा है।” वस्तुतः परम सत्य तो एक है, जिसमें हम सभी स्थित हैं और जिनकी ये सारी वस्तुएँ हैं। उनका सौन्दर्य तथा आनन्द भी परम तथा असीम है और यदि कोई कृष्ण कहलाने वाले इस परम सत्य के विषय में सुनता है, तो सांसारिक द्वन्द्व के मोह के प्रति उसकी आसक्ति नष्ट हो जाती है।

आचार्यों के अनुसार तथा निश्चित रूप से संस्कृत व्याकरण के अनुसार इस श्लोक की द्वितीय पंक्ति में आये दो शब्दों का धर्म-अविनष्टाः के रूप में विश्लेषण किया जा सकता है। तब पूरी पंक्ति का अर्थ इस तरह होगा—कृष्ण के विषय में सुनने से अधार्मिक द्वन्द्व दूर हो जाता है और मनुष्य भौतिक मोह से विनष्ट नहीं होता (अविनष्ट)। तब दीनाः का वैकल्पिक पाठ है धीराः, जिसका अर्थ है कि मनुष्य आध्यात्मिक रूप से गम्भीर बन जाता है और नाशवान भौतिक सम्बन्धों से अपनी अनुरक्ति छोड़ देता है। इस प्रसंग में विहङ्गाः शब्द से हंसों का बोध होगा जो नीर-क्षीर विवेक के प्रतीक हैं।

इस श्लोक के सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने रूप गोस्वामी का यह उद्धरण ( उज्ज्वल नीलमणि ( १४.१९४ ) में दिया है—

भंग्या त्यागौचिती तस्य खगानामपि खेदनात् ।

यत्र सानुशयं प्रोक्ता तद्भवेद् अभिजल्पितम् ॥

“जब कोई प्रेमिका अपरोक्ष में पछतावे के रूप में कहती है कि उसका प्रेमी त्यागने योग्य है, तो ऐसी उक्ति दुखपूर्ण पक्षी की चीख के समान होती है और *अभिजल्प* कहलाती है।”

वयमृतमिव जिह्वाव्याहतं श्रद्धधानाः

कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णावध्वो हरिण्यः ।

ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र-

स्मररुज उपमन्त्रिभण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥

### शब्दार्थ

वयम्—हम; ऋतम्—सच्ची; इव—सदृश; जिह्वा—धोखेबाज, छलिया; व्याहतम्—उसकी वाणी; श्रद्धधानाः—विश्वास करके; कुलिक—शिकारी; रुतम्—गीत; इव—मानो; अज्ञाः—मूर्ख; कृष्णा—काले हिरन की; अध्वः—पत्नियाँ; हरिण्यः—हिरनी; ददृशुः—अनुभव किया; असकृत्—बारम्बार; एतत्—यह; तत्—उसका; नख—नाखुनों के; स्पर्श—स्पर्श से; तीव्र—तेज; स्मर—कामदेव की; रुजः—वेदना; उपमन्त्रिन्—हे दूत; भण्यताम्—बोलो; अन्य—दूसरी; वार्ता—कथा, बात।

उनके छलपूर्ण शब्दों को सच मानकर हम उस काले हिरन की मूर्ख पत्नियों के समान बन गईं जो निष्ठुर शिकारी के गीत में भरोसा कर बैठती हैं। इस तरह हम उनके नाखुनों के स्पर्श से उत्पन्न काम की तीव्र पीड़ा का बारम्बार अनुभव करती रहीं। हे दूत, अब कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई बात कहो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती श्रीमती राधारानी के इस कथन को *अजल्प* की कोटि में रखते हैं जिसकी परिभाषा रूप गोस्वामी ने *उज्वल नीलमणि* (१४.१९६) में दी है—

जैहम्यं तस्यार्तिदत्त्वं च निर्वेदाद् यत्र कीर्तितम् ।

भंग्यान्यसुखदत्त्वं च स आजल्प उदीरितः ॥

“घृणा में किया गया वर्णन कि किस तरह प्रेमी पुरुष धोखेबाज होता है और किसी को कष्ट देता है किन्तु ऐसा दिखलाता है मानो अन्यो को सुख देता है, *आजल्प* कहालाता है।”

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं

वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।

नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं

सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥

### शब्दार्थ



प्रिय—मेरे प्यारे; सख—हे मित्र; पुनः—एक बार फिर; आगाः—आये हो; प्रेयसा—मेरे प्रेमी; प्रेषितः—भेजा गया; किम्—क्या; वरय—चुन लो; किम्—क्या; अनुरुन्धे—जो चाहो; माननीयः—सम्मान के योग्य; असि—हो; मे—मेरे द्वारा; अङ्ग—हे प्रिय; नयसि—लाये हो; कथम्—क्यों; इह—यहाँ; अस्मान्—हमको; दुस्त्यज—छोड़ पाना मुश्किल; द्वन्द्व—जिसके साथ माधुर्य सम्बन्ध हो; पार्श्वम्—बगल में; सततम्—निरन्तर; उसि—वक्षस्थल पर; सौम्य—हे भद्र; श्रीः—लक्ष्मीजी; वधूः—उनकी प्रेयसी; साकम्—उनके साथ; आस्ते—उपस्थित है।

हे मेरे प्रियतम के मित्र, क्या मेरे प्रेमी ने फिर से तुम्हें यहाँ भेजा है? हे मित्र, मुझे तुम्हारा सम्मान करना चाहिए, अतः जो चाहो वर माँग सकते हो। किन्तु तुम हमें उसके पास फिर से ले जाने के लिए यहाँ क्यों आये हो जिसके मधुर प्रेम को छोड़ पाना इतना कठिन है? कुछ भी हो, हे भद्र भौरै, उनकी प्रेयसी तो लक्ष्मीजी हैं और वे उनके साथ सदैव ही उनके वक्षस्थल पर विराजमान रहती हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण नामक पुस्तक में श्रील प्रभुपाद ने इस श्लोक के प्रसंग की व्याख्या इस प्रकार की है : “जब राधारानी भौरै से बातें कर रही थीं और भौरा इधर-उधर उड़ रहा था तभी वह सहसा दृष्टि से ओझल हो गया। वे कृष्ण से बिलुडने के कारण पूर्णतया शोकमग्न थीं और भौरै से बातें करके आनन्द का अनुभव कर रही थीं, किन्तु ज्योंही भौरा अदृश्य हो गया वे यह सोचकर पागल सी हो गई कि हो सकता है यह भौरा कृष्ण को यह सूचित करने के लिए उनके पास लौट गया हो कि राधारानी तो उनके विरुद्ध बातें कर रही है। उन्होंने सोचा, “कृष्ण यह सुनकर बहुत ही दुखी हुए होंगे।” इस तरह वे अन्य प्रकार के आनन्द से अभिभूत थीं।

तभी भौरा इधर-उधर उड़ता हुआ पुनः उनके समक्ष प्रकट हुआ। उन्होंने सोचा, “कृष्ण अब भी मुझ पर दयालु हैं। दूत द्वारा हृदय-विदारक सन्देश ले जाने पर भी वे इतने दयालु हैं कि उन्होंने मुझे फिर से उनके पास ले जाने के लिए उसे भेजा है।” इस बार श्रीमती राधारानी अत्यन्त सतर्क थीं कि वे कृष्ण के विरुद्ध कुछ भी न कहें।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती व्याख्या करते हैं कि श्री अर्थात् लक्ष्मीजी में विविध रूप धारण करने की शक्ति है। इसलिए जब कृष्ण अन्य स्त्रियों के साथ रमण करते हैं, तो वे स्वर्णरिखा के रूप में उनके वक्षस्थल पर रहती हैं। जब वे अन्य स्त्रियों के साथ रमण नहीं करते होते तो वे इस रूप को एक ओर रख कर तरुणी के प्राकृतिक सुन्दर रूप में उन्हें आनन्द प्रदान करती हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार श्रीमती राधारानी का यह कथन प्रतिजल्प का उदाहरण है जैसा कि उज्ज्वल नीलमणि (१४.१९८) में श्रील रूप गोस्वामी वर्णन करते हैं—

दुस्त्यजद्वन्द्वभावेऽस्मिन् प्राप्तिर्नर्हित्यनुद्धतम् ।

दूत सम्माननेनोक्तं यत्र स प्रतिजल्पकः ॥

“जब प्रेमिका दीन वचन कहती है कि वह प्रेमी को प्राप्त करने के अयोग्य होते हुए भी उसके साथ मधुर सम्बन्ध की आशा नहीं छोड़ पाती, तो अपने प्रेमी के सन्देश के सम्मान में कहे गये ऐसे शब्द प्रतिजल्प कहलाते हैं।”

यहाँ श्रीमती राधारानी अपने कटु-भावों को त्यागकर श्रीकृष्ण की महानता को दीन भाव से स्वीकार करती हैं।

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनास्ते

स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ।

क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते

भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ॥ २१ ॥

#### शब्दार्थ

अपि—निश्चय ही; बत—खेद है; मधु-पुर्याम्—मथुरा नगरी में; आर्य-पुत्रः—नन्द महाराज का पुत्र; अधुना—इस समय; आस्ते—रहता है; स्मरति—स्मरण करता है; सः—वह; पितृ-गेहान्—अपने पिता के घरेलू काम-काज को; सौम्य—हे महात्मा ( उद्धव ); बन्धून्—अपने मित्रगण को; च—तथा; गोपान्—ग्वालबालों को; क्वचित्—कभी कभी; अपि—अथवा; सः—वह; कथाः—बातें; नः—हम; किङ्करीणाम्—दासियों की; गृणीते—कहकर सुनाता है; भुजम्—हाथ; अगुरु-सु-गन्धम्—अगुरु की सुगंध वाला; मूर्ध्नि—सिर पर; अधास्यत्—रखेगा; कदा—कब; नु—हो सकता है।

हे उद्धव, दरअसल यह बहुत ही खेदजनक है कि कृष्ण मथुरा में वास करते हैं। क्या वे अपने पिता के गृहकार्यों तथा अपने ग्वालबाल मित्रों की याद करते हैं? हे महात्मा, क्या वे कभी अपनी इन दासियों की भी बातें चलाते हैं? वे कब अपने अगुरु-सुगन्धित हाथ को हमारे सिरों पर रखेंगे?

तात्पर्य : इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत चैतन्य चरितामृत (आदि ६.६८) से लिये गये हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस श्लोक में तथा पिछले नौ श्लोकों में अभिव्यक्त भावों की व्याख्या गहन आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि से काव्यात्मक रूप में करते हैं। वे राधारानी की भावनाओं की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

श्रीमती राधारानी ने सोचा: चूँकि कृष्ण कभी ब्रज से संतुष्ट थे किन्तु फिर भी वे मथुरा चले गये तो

क्या वे उस स्थान को भी छोड़कर दूसरे स्थान को नहीं जाना चाहेंगे? मथुरा वृन्दावन से इतना निकट है कि वे संभवतः यहाँ भी वापस आ सकते हैं।

“कृष्ण एक सम्मानित व्यक्ति नन्द महाराज के पुत्र हैं अतएव वे अपने पिता के प्रति कृतज्ञता दिखाने के लिए ही मथुरा में रह रहे होंगे क्योंकि उन्होंने उन्हें वहाँ जाने का अधिकार दिया था। दूसरी ओर, नन्द का पूरा जीवन कृष्ण को ही समर्पित है और नन्द इतने नादान हैं कि वे यदुओं की चाल में आ गये और वे कृष्ण को मथुरा ले आये। कृष्ण सोचते होंगे, “हाय! जब मेरे पिता तक मुझे व्रज वापस नहीं ला सकते तो मैं वहाँ वापस जाने के लिए क्या कर सकता हूँ? अतः कृष्ण यहाँ आने के लिए अधीर होंगे अतः उन्होंने तुम्हें दूत बनाकर भेजा है।

“नादान होने से ही नन्द ने अपने पुत्र को जाने दिया। यदि नन्द व्रज-रानी, कृष्ण की माता, को ऐसा करने देते तो वे अक्रूर के रथ पर चढ़ गई होतीं और अपने पुत्र को गलेसे लगाये हुए उसके साथ मथुरा तक जातीं और सारी गोपियाँ उनका पीछा कर लेतीं। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं था।

“जब से कृष्ण गये हैं नन्द महाराज उनके वियोग से स्तम्भित हैं और नन्द का कोषागार, भंडार, रसोई, शयनागार ऐश्वर्यपूर्ण घर आदि अब खाली हैं। न तो उनमें झाड़ू लगती है, न सफाई होती है, जिससे उनमें घास, पत्तियाँ, धूल तथा मकड़ी के जाले लगे हैं। क्या कृष्ण कभी अपने पिता के घरों की याद करते हैं? क्या वे कभी सुबल तथा अन्य मित्रों की याद करते हैं, जो अन्य उपेक्षित घरों में हतप्रभ होकर लेटे हुए हैं?

“कृष्ण के साथ मथुरा में रह रही स्त्रियाँ यह जान नहीं सकतीं कि कृष्ण को किस तरह सेवा करवाना सबसे अच्छा लगता है। जब वे देखतीं हैं कि कृष्ण प्रसन्न नहीं हैं और उनसे पूछती हैं कि वे उन्हें किस तरह प्रसन्न कर सकती हैं, तो क्या वे हम गोपियों का नाम लेते हैं?

“कृष्ण को उन्हें बता देना चाहिए कि “हे शहरी स्त्रियो! तुम मुझे व्रज की गोपियों जैसा प्रसन्न नहीं कर सकतीं। वे फूलों की माला गूँथने, अपने शरीरों पर अंगराग लगाने, तार-वाद्यों पर ताल लय और राग बजाने, रास में नाचने तथा गाने, अपना सौन्दर्य, आकर्षण तथा चतुरता प्रदर्शन करने और पहेलियाँ बुझाने में निपुण हैं। वे अपने प्रेमी से मिलने और द्वेषजनित क्रोध एवं शुद्ध प्रेम के अन्य चिह्न प्रदर्शित करने की लीलाओं में विशेष रूप से पटु हैं। निस्संदेह कृष्ण यह सब जानते हैं। इसलिए

सम्भवतया वे मथुरा की स्त्रियों से कहेंगे, “हे यदुकुल की स्त्रियो! तुम लोग अपने घर वापस जाओ। मैं और अधिक तुम्हारी संगति नहीं चाहता। मैं कल प्रातःकाल ही ब्रज वापस जा रहा हूँ।

“कब कृष्ण ऐसा कहेंगे और वे अपने अगुरु-वासित हाथ को हमारे सिरों के ऊपर रखने के लिये यहाँ वापस आएँगे? तब वे हमें यह कहकर सान्त्वना देंगे, “मेरी प्राण-प्रियाओ! मैं शपथ खाता हूँ कि अब तुम लोगों को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा। निस्सन्देह तुम जैसे लेशमात्र गुणों वाली स्त्रियाँ तीनों लोकों में ढूँढ़े भी मुझे नहीं मिल पाई।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती श्रीमती राधारानी के मनोभावों की इस प्रकार व्याख्या करते हैं। वे यह भी बतलाते हैं कि इस श्लोक में सुजल्प का उदाहरण प्राप्त है, जो रूप गोस्वामी द्वारा उज्ज्वल नीलमणि (१४.२००) में इस प्रकार वर्णित है—

*यत्रार्जवात् सगाम्भीर्यं सदैन्यं सहचापलम् ।*

*सोत्कण्ठं च हरिः पृष्ठः स सुजल्पो निगद्यते ॥*

“जब कोई प्रेमिका निष्ठावश गम्भीरता, दीनता, चपलता तथा उत्सुकतापूर्वक श्रीहरि से प्रश्न करती है, तो उस उक्ति को सुजल्प कहते हैं।”

सैंतालीसवें अध्याय के इस अनुभाग का समापन करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि दैव उन्माद (दिव्योन्माद) के दस विभाग होते हैं, जिन्हें चित्रजल्प के दस विभागों के रूप में व्यक्त किया जाता है। ऐसा दिव्योन्माद मोह की विशेष लीला में प्रदर्शित किया जाता है, जो कि श्रीमती राधारानी के महाभाव का ही अंश है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इन भावों की व्याख्या के लिए रूप गोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि (१४.१७४, १७८-८०) से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

*प्रायो वृन्दावनेश्वर्या मोहनोऽयमुदञ्चति ।*

*एतस्य मोहनाख्यस्य गतिं कामप्युपेयुषः ॥*

*भ्रमाभा कापि वैचित्री दिव्योन्माद इतीर्यते ।*

*उद्धूर्णा चित्रजल्पाद्यास्तद्भेदा बहवो मताः ॥*

*प्रेष्ठस्य सुहृदालोके गूढरोषाभिजृम्भितः ।*

*भूरिभावमयो जल्पो यस्तीव्रोत्कण्ठितान्तिमः ॥*

चित्रजल्पो दशांगोऽयं प्रजल्पः परिजल्पितः ।

विजल्पोऽज्जल्पसंजल्पः अवजल्पोऽभिजल्पितम् ॥

आजल्पः प्रतिजल्पश्च सुजल्पश्चेति कीर्तितः ।

“एक तरह से वृन्दावन की राजकुमारी (श्रीमती राधारानी) के मन में ही मोह के भाव उठते हैं। उसने इस मोह की विशेष अवस्था प्राप्त कर ली है, जो भ्रम जैसी आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। यह दिव्योन्माद कहलाती है और इसके कई पक्ष हैं, जो चंचल होकर आते जाते रहते हैं। इनमें से एक चित्रजल्प है। अपने प्रेमी के मित्र को देखकर की गई यह वार्ता प्रच्छन्न क्रोध से पूर्ण रहती है और कई विभिन्न भावों से युक्त होती है। इसका अन्त उनकी तीव्र उत्सुकता में होता है।

इस चित्रजल्प के दस विभाग हैं, जिन्हें प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, सज्जल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प तथा सुजल्प कहते हैं।”

कुछ विद्वानों का कहना है कि अपनी प्रियतमा की वाणी की मधुरता का पान करने के लिए ही कृष्ण ने भ्रमर दूत का रूप धारण किया।

श्रीशुक उवाच

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ।

सान्त्वयन्प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; उद्धवः—उद्धव ने; निशम्य—सुनकर; एवम्—इस प्रकार; कृष्ण-दर्शन—कृष्ण को देखने के पश्चात; लालसाः—लालायित; सान्त्वयन्—ढाढ़स बँधाते हुए; प्रिय—उनके प्रेमी के; सन्देशैः—सन्देशों से; गोपीः—गोपियों से; इदम्—यह; अभाषत—उसने कहा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह सुनकर उद्धव ने गोपियों को ढाढ़स बँधाने का प्रयास किया जो कृष्ण का दर्शन पाने के लिए अत्यन्त लालायित थीं। इस तरह वे उनके प्रेमी का सन्देश उनसे बताने लगे।

श्रीउद्धव उवाच

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ।

वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; अहो—निस्सन्देह; यूयम्—तुम सभी; स्म—निश्चय ही; पूर्ण—पूरे हो चुके; अर्थाः—प्रयोजन; भवत्यः—तुम लोग; लोक—सभी लोगों द्वारा; पूजिताः—पूजित; वासुदेवे भगवति—भगवान् वासुदेव कृष्ण में; यासाम्—जिनका; इति—इस प्रकार से; अर्पितम्—अर्पित किया हुआ; मनः—मन ।

श्री उद्धव ने कहा : निश्चय ही तुम सारी गोपियाँ सभी प्रकार से सफल हो और विश्व-भर में पूजित हो क्योंकि तुमने इस तरह से भगवान् वासुदेव में अपने मन को समर्पित कर रखा है ।

तात्पर्य : यद्यपि अन्य भक्त निश्चय ही अपना मन भगवान् में समर्पित कर चुके होते हैं किन्तु अपने प्रेम की प्रखरता में गोपियाँ अद्वितीय हैं ।

दानव्रततपोहोम जपस्वाध्यायसंयमैः ।

श्रेयोभिर्विधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

दान—दान; व्रत—कठिन व्रत; तपः—तपस्या; होम—अग्नि यज्ञ; जप—मंत्रों का गुप्त उच्चारण; स्वाध्याय—वैदिक ग्रंथों का अध्ययन; संयमैः—तथा विधि-विधानों से; श्रेयोभिः—शुभ साधनों द्वारा; विविधैः—विविध; च—भी; अन्यैः—अन्य; कृष्णे—कृष्ण के प्रति; भक्तिः—भक्ति; हि—निस्सन्देह; साध्यते—सम्पन्न की जाती है ।

दान, कठिन व्रत, तपस्या, अग्नि यज्ञ, जप, वैदिक ग्रंथों का अध्ययन, विधि-विधानों का पालन तथा अन्य अनेक शुभ साधनों द्वारा भगवान् कृष्ण की भक्ति प्राप्त की जाती है ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने यहाँ पर वर्णित विधियों की व्याख्या की है । दान—भगवान् विष्णु तथा उनके भक्तों को दान दिया जाता है । व्रत—एकादशी जैसे व्रत रखना । तपस्—कृष्ण के निमित्त इन्द्रिय-तृप्ति का परित्याग । होम—विष्णु को समर्पित अग्नि यज्ञ । जप—भगवान् के नामों का मन में उच्चारण करना । स्वाध्याय—वैदिक ग्रंथों यथा गोपाल तापनी उपनिषद् का अध्ययन एवं वाचन ।

भगवत्युत्तमःश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ।

भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥

#### शब्दार्थ

भगवति—भगवान् में; उत्तमः-श्लोके—उत्तम काव्य द्वारा जिनका यशोगान किया जाये; भवतीभिः—अपने द्वारा; अनुत्तमा—अद्वितीय; भक्तिः—भक्ति; प्रवर्तिता—स्थापित; दिष्ट्या—( बधाई है तुम्हारे ) सौभाग्य की; मुनीनाम्—बड़े बड़े मुनियों के लिए; अपि—भी; दुर्लभा—प्राप्त करना कठिन ।

अपने सौभाग्य से तुम सबों ने भगवान् उत्तमश्लोक के प्रति शुद्ध-भक्ति का अद्वितीय मानदण्ड स्थापित किया है—यह मानदण्ड ऐसा है, जिसे मुनि भी कठिनाई से प्राप्त कर सकते हैं ।

तात्पर्य : प्रवर्तिता शब्द इसका सूचक है कि इस जगत में गोपियाँ ही ईश्वर के शुद्ध प्रेम का

मानदण्ड लाई जो इसके पूर्व पृथ्वी पर अज्ञात था। इस तरह उद्धव उन्हें धार्मिक जीवन में अद्वितीय योगदान के लिए बधाई देते हैं।

दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान्स्वजनान्भवनानि च ।  
हित्वावृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥

**शब्दार्थ**

दिष्ट्या—सौभाग्य से; पुत्रान्—पुत्रों को; पतीन्—पतियों को; देहान्—शरीरों को; स्व-जनान्—सम्बन्धियों को; भवनानि—घरों को; च—तथा; हित्वा—छोड़कर; अवृणीत—चुना; यूयम्—तुम सबों ने; यत्—यह तथ्य कि; कृष्ण-आख्यम्—कृष्ण नामक; पुरुषम्—पुरुष को; परम्—परम।

सौभाग्य से तुम लोगों ने अपने पुत्रों, पतियों, शारीरिक सुविधाओं, सम्बन्धियों तथा घरों का परित्याग उस परम पुरुष के लिए किया है, जो कृष्ण नाम से जाना जाता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि गोपियों ने इन वस्तुओं के प्रति अपने स्वामित्व-भाव को त्याग दिया। इतिहास बतलाता है कि गोपियाँ अपने घरों में अपने परिवारों के साथ वृन्दावन में ही रहती रहीं। किन्तु सामान्य पुरुषों से सर्वथा भिन्न उन्होंने पुत्रों, पतियों आदि के प्रति स्वामित्व के गर्व का पूर्णतया त्याग कर दिया। उन्होंने कभी भी इनको भोगने का प्रयास नहीं किया अपितु उन्होंने अपने मन तथा हृदय पूर्णतया परमेश्वर को सौंप दिये जैसी कि संसार के महान् धार्मिक शास्त्रों में संस्तुति की गई है। हमें चाहिए कि गोपियों के उदाहरण का अनुसरण करते हुए तन-मन और अपनी शक्ति से भगवान् से प्रेम करें।

सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ।  
विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥

**शब्दार्थ**

सर्व-आत्म—सर्वतोभावेन; भावः—प्रेम; अधिकृतः—अधिकार प्राप्त; भवतीनाम्—आपके द्वारा; अधोक्षजे—दिव्य स्वामी के लिए; विरहेण—विरह भाव से; महा-भागाः—हे अत्यन्त भाग्यशालिनी; महान्—महान्; मे—मुझको; अनुग्रहः—दया; कृतः—की गई।

हे परम भाग्यशालिनी गोपियो, तुम लोगों ने दिव्य स्वामी के लिए अनन्य प्रेम का अधिकार ठीक ही प्राप्त किया है। निस्सन्देह, कृष्ण के विरह में उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करके तुम लोगों ने मुझ पर महती कृपा दिखलाई है।

तात्पर्य : गोपियों ने उद्धव को ही नहीं अपितु सारे जगत के समक्ष भगवत्प्रेम के सुख को प्रदर्शित

किया और इस तरह उन्होंने हर व्यक्ति पर अपनी कृपा प्रदान की। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार, क्योंकि गोपियों ने अपनी प्रेमाभक्ति सही ढंग से सम्पन्न की थी इसलिए भगवान् उनके प्रेम के वशीभूत हो सके। फिर भी उनके प्रेम की उत्कटता दिखाने के लिए भगवान् ने बाह्य रूप से उन्हें छोड़ दिया। किन्तु अब वे पुनः उनके बीच उनकी उत्कट भक्ति के माध्यम से आध्यात्मिक रूप में उपस्थित हो गये।

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ।  
यमादायागतो भद्रा अहं भर्तुं रहस्करः ॥ २८ ॥

#### शब्दार्थ

श्रूयताम्—कृपया सुनें; प्रिय—अपने प्रेमी का; सन्देशः—सन्देश; भवतीनाम्—तुम लोगों के लिए; सुख—सुख; आवहः—लाकर; यम्—जो; आदाय—ढोकर; आगतः—आया हूँ; भद्राः—उत्तम स्त्रियो; अहम्—मैं; भर्तुः—मेरे स्वामी का; रहः—गुह्य कार्यो का; करः—करने वाला ।

हे भद्र-देवियो, अब तुम सब अपने प्रेमी का सन्देश सुनो जिसे अपने स्वामी का विश्वसनीय दास होने से मैं तुम लोगों के पास लेकर आया हूँ।

#### श्रीभगवानुवाच

भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।  
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ।  
तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥ २९ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; भवतीनाम्—तुम स्त्रियों का; वियोगः—विरह; मे—मुझसे; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; सर्व-आत्मना—सारे जीवों की आत्मा से; क्वचित्—कभी; यथा—जिस तरह; भूतानि—भौतिक तत्त्व; भूतेषु—सारे सृजित प्राणियों में; खम्—आकाश; वायु-अग्निः—वायु तथा अग्नि; जलम्—जल; मही—पृथ्वी; तथा—अतः; अहम्—मैं; च—तथा; मनः—मन; प्राण—प्राण-वायु; भूत—भौतिक तत्त्व; इन्द्रिय—शारीरिक इन्द्रियाँ; गुण—तथा प्रकृति के आदि गुण के; आश्रयः—आश्रय के रूप में उपस्थित ।

भगवान् ने कहा है, “तुम वास्तव में कभी भी मुझसे विलग नहीं हो क्योंकि मैं सारी सृष्टि का आत्मा हूँ। जिस तरह प्रकृति के तत्त्व—आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी—प्रत्येक सृजित वस्तु में उपस्थित रहते हैं उसी तरह मैं हर एक के मन, प्राण तथा इन्द्रियों में और भौतिक तत्त्वों के भीतर तथा प्रकृति के गुणों में उपस्थित रहता हूँ।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार भगवान् के कथन की दार्शनिक दिखने वाली इस भाषा में गूढ़ अर्थ छिपा है। भगवान् गुप्त रूप से गोपियों को बतला रहे थे कि वे अपने प्रेम के बदले उन सबों में समस्त सृष्टि के आत्मारूप में ही नहीं अपितु उनके विशेष प्रेमी



के रूप में भी उपस्थित थे। इस सन्दर्भ में *गुण* शब्द गोपियों के विशिष्ट दैवी गुणों का सूचक है, जिससे श्रीकृष्ण आकृष्ट हुए। *सर्वात्मना* शब्द को जिसका यहाँ हमने स्वयं भगवान् कृष्ण के संदर्भ में लिया है (मैं शब्द के अनुरूप होते हुए, जो करण कारक में उपयुक्त हुआ है) *सर्वथा* अथवा “पूर्णतया” के रूप में भी समझा जाता है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि एक अर्थ के अनुसार भगवान् कृष्ण अनुपस्थित थे किन्तु वे कभी भी पूरी तरह अनुपस्थित नहीं रह सकते क्योंकि अपने आध्यात्मिक रूप में वे गोपियों के हृदयों तथा मन में सदैव विद्यमान रहते हैं।

श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* तथा अन्य कृतियों में विस्तार से बतलाया है कि गोपियों से अपने को विलग करने का कारण यह था कि कृष्ण अपने प्रति उनके प्रेम को प्रखर बनाना चाहते थे और, जैसाकि उद्धव ने देखा, वे गोपियों के प्रेम की प्रखरता को प्रकट करके अन्य भक्तों को आशीर्वाद देना चाहते थे। तथ्य तो यह है कि भगवान् आध्यात्मिक रूप से गोपियों के साथ थे क्योंकि वे उनकी नित्य संगिनियाँ हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी इंगित करते हैं कि मूर्खजन यह निष्कर्ष निकालेंगे कि कृष्ण द्वारा दार्शनिक भाषा के प्रयोग का अर्थ था कि भगवान् गोपियों को कृष्णभावनाभावित दर्शन की मूलभूत बातें बतलाकर उन्हें मुक्ति तक पहुँचाना चाह रहे थे। सच तो यह है कि गोपियाँ सर्वोच्च मुक्तात्माएँ हैं और श्रीकृष्ण के साथ उनकी लीलाओं को प्रामाणिक आचार्यों की सहायता से ही समझा जा सकता है। जब गोपियाँ रास-नृत्य के लिए आईं तो कृष्ण ने उन्हें सामान्य नीति तथा नैतिकता पर बल देते हुए *कर्मयोग* का उपदेश देना चाहा किन्तु गोपियाँ तो उससे आगे थीं। इसी तरह कृष्ण अब उन्हें *ज्ञान योग* प्रदान कर रहे हैं किन्तु गोपियों के लिए यह भी अपर्याप्त है क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति स्वैच्छिक शुद्ध प्रेम प्राप्त कर रखा है।

आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्यनुपालये ।

आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥ ३० ॥

#### शब्दार्थ

आत्मनि—अपने में; एव—निस्सन्देह; आत्मना—अपने से; आत्मानम्—स्वयं; सृजे—उत्पन्न करता हूँ; हन्मि—नष्ट करता हूँ; अनुपालये—पालनपोषण करता हूँ; आत्म—निजी; माया—योग शक्ति के; अनुभावेन—बल से; भूत—भौतिक तत्त्व; इन्द्रिय—इन्द्रियों; गुण—तथा गुण; आत्मना—से युक्त।

मैं ही अपनी निजी शक्ति के द्वारा भौतिक तत्त्वों, इन्द्रियों तथा प्रकृति के गुणों का सृजन

करता हूँ, उन्हें बनाये रखता हूँ और फिर अपने भीतर समेट लेता हूँ।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् परम पुरुष हैं किन्तु उनमें तथा उनकी सृष्टि में कोई द्वैत नहीं है क्योंकि सृजन तो उनका विस्तार मात्र है। इसी एकत्व पर यहाँ भगवान् बल देते हैं।

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ।  
सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्धिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ ३१ ॥

#### शब्दार्थ

आत्मा—आत्मा; ज्ञान-मयः—दिव्य ज्ञान से युक्त; शुद्धः—शुद्ध; व्यतिरिक्तः—पृथक्; अगुण-अन्वयः—भौतिक गुणों के कर्मफलों से अलिप्त; सुषुप्ति—प्रगाढ़ निद्रा में; स्वप्न—सामान्य नींद; जाग्रद्धिः—तथा जागृत चेतना; माया—माया को; वृत्तिभिः—कार्यों से; ईयते—अनुभव किया जाता है।

शुद्ध चेतना या ज्ञान से युक्त होने से आत्मा प्रत्येक भौतिक वस्तु से पृथक् है और प्रकृति के गुणों के पाश से अलिप्त है। आत्मा का अनुभव भौतिक प्रकृति के तीन कार्यों के माध्यम से किया जा सकता है—ये हैं जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति।

तात्पर्य : यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि आत्मा शुद्ध ज्ञान या शुद्ध चेतना से बना है अतएव भौतिक प्रकृति से तात्त्विक रूप में सर्वथा पृथक् है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि आत्मा का अर्थ “परमात्मा, भगवान् कृष्ण” भी लगाया जा सकता है। चूँकि पिछले श्लोकों में भगवान् बतला चुके हैं कि सारे भौतिक विषय उनके अंश हैं अतः माया वृत्तिभिरीयते पद सूचित करता है कि इस जगत का गहन अध्ययन करने से हमें ईश्वर की अनुभूति होगी। इस दृष्टि से भी गोपियों को सलाह दी गई कि वे शोक न करें।

येनेन्द्रियार्थान्ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः ।  
तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥

#### शब्दार्थ

येन—जिस ( मन ) से; इन्द्रिय—इन्द्रियों के; अर्थान्—विषयों पर; ध्यायेत—ध्यान करता है; मृषा—झूठा; स्वप्न-वत्—सपने की तरह; उत्थितः—नींद से जगा; तत्—उस ( मन ); निरुन्ध्यात्—वश में करे; इन्द्रियाणि—इन्द्रियों को; विनिद्रः—सोता हुआ नहीं ( सतर्क ); प्रत्यपद्यत—प्राप्त करते हैं।

जिस तरह तुरन्त का जगा हुआ व्यक्ति स्वप्न के विषय में सोचता रह सकता है यद्यपि वह भ्रामक होता है उसी तरह मन के द्वारा मनुष्य इन्द्रियविषयों का ध्यान करता है जिन्हें बाद में इन्द्रियाँ प्राप्त कर सकती हैं। इसलिए मनुष्य को पूर्णतया सतर्क रहना चाहिए और मन को वश

में लाना चाहिए।

**तात्पर्य :** प्रतिपद क्रिया का अर्थ है “अनुभूति होना या पूर्वावस्था को प्राप्त होना।” जो आत्मा विनिद्र है अर्थात् भौतिक चेतना की स्वप्नवत अवस्था से मुक्त है, वह भगवान् श्रीकृष्ण के नित्य सेवक के रूप में अपनी स्वाभाविक स्थिति को फिर से प्राप्त कर लेता है। इस तरह शुद्ध चेतना से आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है।

एतदन्तः समाध्नायो योगः साङ्ख्यं मनीषिणाम् ।

त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥ ३३ ॥

#### शब्दार्थ

एतत्—यह; अन्तः—निष्कर्ष रूप में; समाध्नायः—सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय; योगः—योग पद्धति; साङ्ख्यम्—सांख्य ध्यान की विधि जिससे मनुष्य आत्मा तथा पदार्थ के अन्तर को जान सकता है; मनीषिणाम्—बुद्धिमानों का; त्यागः—त्याग; तपः—तपस्या; दमः—इन्द्रिय संयम; सत्यम्—तथा ईमानदारी; समुद्र-अन्ताः—समुद्र में जाने वाली; इव—सदृश; आप-गाः—नदियाँ।

बुद्धिमान अधिकारी जनों के अनुसार यही सारे वेदों तथा योगाभ्यास, सांख्य, त्याग, तपस्या, इन्द्रिय संयम तथा सचाई का चरम निष्कर्ष है, जिस तरह कि सारी नदियों का चरम गन्तव्य समुद्र है।

**तात्पर्य :** भगवान् कहते हैं कि सारे वैदिक वाङ्मय का उद्देश्य आत्मा को मन तथा इन्द्रियों के नियंत्रण तक ले आना और उन्हें दिव्य आत्म-साक्षात्कार में स्थिर करना है। इस तरह तथाकथित योग या धर्म की विधियाँ जिनमें अनियंत्रित इन्द्रियतृप्ति निहित होती है, वास्तव में आध्यात्मिक विधियाँ न होकर मूर्खों के लिए सुगम तरीके हैं जिनसे वे अपने पाशविक आचरण की पुष्टि कर सकते हैं।

यहाँ पर भगवान् कृष्ण गोपियों को आश्चस्त करते हैं कि आत्म-साक्षात्कार में अपने मन को स्थिर करने से उन्हें भगवान् से आध्यात्मिक तादात्म्य की अनुभूति होगी। इस तरह उन्हें वियोग की पीड़ा नहीं गुजरना पड़ेगा।

यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ।

मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुद्धानकाम्यया ॥ ३४ ॥

#### शब्दार्थ

यत्—तथ्य यह है; तु—किन्तु; अहम्—मैं; भवतीनाम्—तुम सबों से; वै—निस्सन्देह; दूरे—बहुत दूर; वर्ते—स्थित हूँ; प्रियः—प्रिय; दृशाम्—आँखों के लिए; मनसः—मन का; सन्निकर्ष—आकर्षण; अर्थम्—के लिए; मत्—मुझ पर; अनुद्धान—तुम्हारे ध्यान के लिए; काम्यया—कामना करते हुए।

किन्तु जिस असली कारण से तुम सबों की आँखों की प्रिय वस्तुरूप, मैं, तुम लोगों से अति दूर रह रहा हूँ, वह यह है कि मैं अपने प्रति तुम सबों के चिंतन को प्रगाढ़ करना चाहता था और इस तरह तुम्हारे मनों को अपने अधिक निकट लाना चाहता था।

तात्पर्य : कभी कभी जो वस्तु हमारी आँखों के पास होती है, वही हमारे हृदय तथा मन से दूर होती है और इसके विपरीत उसकी अनुपस्थिति से हृदय उसे अधिक चाहने लगता है। यद्यपि भगवान् कृष्ण गोपियों से दूर होते जा रहे प्रतीत होते हैं किन्तु वे उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर अपने अधिक निकट ला रहे थे।

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ।  
स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षिगोचरे ॥ ३५ ॥

#### शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; दूर-चरे—दूर स्थित होने पर; प्रेष्ठे—प्रेमी; मनः—मन; आविश्य—लीन होकर; वर्तते—रहता है; स्त्रीणाम्—स्त्रियों का; च—तथा; न—नहीं; तथा—अतः; चेतः—उनके मन; सन्निकृष्टे—पास होने पर; अक्षि-गोचरे—उनकी आँखों के सामने मौजूद।

जब प्रेमी दूर होता है, तो स्त्री उसके विषय में अधिक सोचती है बजाय इसके कि जब वह उसके समक्ष उपस्थित होता है।

तात्पर्य : श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार पुरुषों के साथ भी ऐसा ही होता है। वे उस प्रेमिका के विषय में सोचते हुए अधिकाधिक लीन होते जाते हैं जब वह काफी दूर रहती है बजाय इसके कि जब वह उनके आँखों के समक्ष उपस्थित होती है।

मध्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ।  
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥

#### शब्दार्थ

मधि—मुझमें; आवेश्य—लीन होकर; मनः—अपने मन; कृत्स्नम्—सम्पूर्ण; विमुक्त—छोड़ने के बाद; अशेष—समस्त; वृत्ति—अपना ( भौतिक ) कार्य; यत्—क्योंकि; अनुस्मरन्त्यः—स्मरण कर करके; माम्—मुझको; नित्यम्—निरन्तर; अचिरात्—शीघ्र ही; माम्—मुझको; उपैष्यथ—तुम प्राप्त करोगी।

चूँकि तुम्हारे मन पूर्णतया मुझमें लीन रहते हैं और अन्य सारे कार्यों से मुक्त रहते हैं, तुम सदैव मेरा स्मरण करती हो और इसीलिए तुम लोग शीघ्र ही मुझे पुनः अपने सामने पा सकोगी।

या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन्ब्रज आस्थिताः ।

अलब्धरासाः कल्याण्यो मापुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥ ३७ ॥

**शब्दार्थ**

याः—जो स्त्रियाँ; मया—मेरे साथ; क्रीडता—खेल रही थीं; रात्र्याम्—रात में; वने—जंगल में; अस्मिन्—इस; ब्रजे—ब्रज के ग्राम में; आस्थिताः—रह गईं; अलब्ध—अनुभव न करते हुए; रासाः—रास-नृत्य; कल्याण्यः—भाग्यशाली; मा—मुझको; आपुः—उन्होंने प्राप्त किया; मत्-वीर्य—मेरी शक्तिशाली लीलाओं पर; चिन्तया—एकाग्रता द्वारा ।

यद्यपि कुछ गोपियों को ग्वाल-ग्राम में ही रह जाना पड़ा था जिससे वे रात में जंगल में रचाये गये रास-नृत्य में मेरे साथ क्रीड़ा नहीं कर पाई, तो भी वे परम भाग्यशालिनी थीं। दरअसल वे मेरी शक्तिशाली लीलाओं का ध्यान करके ही मुझे प्राप्त कर सकीं।

श्रीशुक उवाच

एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य ब्रजयोषितः ।

ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशागतस्मृतीः ॥ ३८ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह से; प्रिय-तम—अपने प्रेमी ( कृष्ण ) द्वारा दिये; आदिष्टम्—आदेशों को; आकर्ण्य—सुनकर; ब्रज-योषितः—ब्रज की स्त्रियाँ; ताः—वे; ऊचुः—बोली; उद्धवम्—उद्धव से; प्रीतः—प्रसन्न; तत्—उस; सन्देश—सन्देश; आगत—वापस आयी हुई; स्मृतीः—स्मृतियाँ ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ब्रज की स्त्रियाँ अपने प्रियतम कृष्ण से यह सन्देशा सुनकर प्रसन्न हुईं। उनके शब्दों से उनकी स्मृतियाँ ताजी हो गई अतः उन्होंने उद्धव से इस प्रकार कहा ।

गोप्य ऊचुः

दिष्ट्याहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ।

दिष्ट्याप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ३९ ॥

**शब्दार्थ**

गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; दिष्ट्या—सौभाग्य से; अहितः—शत्रु; हतः—मारा जा चुका है; कंसः—राजा कंस; यदूनाम्—यदुओं का; स-अनुगः—अपने अनुयायियों सहित; अघ—कष्ट का; कृत्—कारण; दिष्ट्या—सौभाग्य से; आप्तैः—अपने शुभचिन्तकों सहित; लब्ध—प्राप्त हुए; सर्व—समस्त; अर्थैः—अपनी इच्छाओं से; कुशली—सुखपूर्वक; आस्ते—रह रहा है; अच्युतः—कृष्ण; अधुना—इस समय ।

गोपियों ने कहा : यह अच्छी बात है कि यदुओं का शत्रु एवं उन्हें सताने वाला कंस अब अपने अनुयायियों सहित मारा जा चुका है। और यह भी अच्छी बात है कि भगवान् अच्युत अपने शुभैषी मित्रों तथा सम्बन्धियों के साथ सुखपूर्वक रह रहे हैं जिनकी हर इच्छा अब पूरी हो रही है।

कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ।

प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारैर्क्षणाच्चितः ॥ ४० ॥

## शब्दार्थ

कच्चित्—शायद; गद-अग्रजः—गद के बड़े भाई, कृष्ण; सौम्य—हे भद्र ( उद्धव ); करोति—दे रहा है; पुर—नगर की; योषिताम्—स्त्रियों का; प्रीतिम्—प्रेमपूर्ण सुख; नः—हमारा; स्निग्ध—वत्सल; स-व्रीड—तथा लज्जालु; हास—हँसी से; उदार—उदार; ईक्षण—चितवनों से; अर्चितः—पूजित।

हे भद्र उद्धव, क्या गद का बड़ा भाई नगर की स्त्रियों को वह आनन्द प्रदान कर रहा है, जो वास्तव में हमारा है? हम ऐसा समझती हैं कि वे स्त्रियाँ उदार चितवनों तथा प्यारी लजीली मुसकानों से उनकी पूजा करती होंगी।

तात्पर्य : गदाग्रज नाम कृष्ण का सूचक है—देवरक्षिता के पहले पुत्र गद का बड़ा भाई (अग्रज)। देवरक्षिता देवकी की बहन थी और देवकी वसुदेव को ब्याही थीं। कृष्ण को इस प्रकार सम्बोधित करके गोपियाँ इंगित करती हैं कि कृष्ण अब अपने को देवकी का ही पुत्र मानते हैं जिसका अर्थ यह होता है कि अब वृन्दावन से उनका सम्बन्ध शिथिल पड़ रहा है। प्रगाढ़ प्रेम के कारण गोपियाँ क्षण-भर भी कृष्ण के विषय में सोचने से अपने को रोक न पाती थीं।

कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च पुरयोषिताम् ।

नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभाजितः ॥ ४१ ॥

## शब्दार्थ

कथम्—कैसे; रति—माधुर्य व्यापार का; विशेष—विशेष रूप से; ज्ञः—ज्ञाता; प्रियः—प्रिय; च—तथा; पुर-योषिताम्—नगर की स्त्रियों का; न अनुबध्येत—बँधा नहीं होगा; तत्—उनके; वाक्यैः—शब्दों से; विभ्रमैः—मोह में डालने वाले संकेतों से; च—तथा; अनुभाजितः—निरन्तर पूजित।

श्रीकृष्ण सभी प्रकार के माधुर्य व्यापार में दक्ष हैं और नगर की स्त्रियों के प्रिय हैं। चूँकि अब वे उनके मोहक शब्दों तथा इशारों से निरन्तर पूजित हैं, तो भला फिर वे उनके पाश में क्योंकर नहीं बँधेंगे?

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार इनमें से प्रत्येक श्लोक भिन्न भिन्न गोपियों द्वारा कहा गया है।

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् ।

गोष्ठिमध्ये पुरस्त्रीणाम्ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥ ४२ ॥

## शब्दार्थ

अपि—यही नहीं; स्मरति—स्मरण करता है; नः—हमको; साधो—हे पवित्रात्मा; गोविन्दः—कृष्ण; प्रस्तुते—बातचीत के दौरान; क्वचित्—कभी; गोष्ठि—सभा; मध्ये—में; पुर-स्त्रीणाम्—नगर की स्त्रियों के; ग्राम्याः—ग्रामीण बालिकाएँ; स्वैर—स्वतंत्र; कथा—बातचीत; अन्तरे—के दौरान।

हे साधु-पुरुष, नगर की स्त्रियों से बातचीत के दौरान क्या गोविन्द कभी हमारी याद करते

हैं? क्या वे उनसे खुल कर वार्ता करते समय कभी हम ग्रामीण बालाओं का भी स्मरण करते हैं?

तात्पर्य : गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में बिना किसी स्वार्थ के इस तरह मग्न थीं कि घोर निराशा के क्षणों में भी उन्होंने अन्य किसी को अपना प्रेम-दान करने की बात सोची ही नहीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती उनकी भावनाओं की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

गोपियों ने कहा होगा, “कृष्ण ने हमें अवश्य ही त्याग दिया होगा क्योंकि हम इसी लायक हैं। निस्सन्देह, हम इस विश्व में सबसे महत्त्वहीन स्त्रियाँ हैं और भोगी जाने के बाद त्यागी हुई हैं। फिर भी क्या कभी हम अपने किसी सद्गुण के कारण या इसलिए कि हमने कुछ गलती की है उनकी स्मृति में प्रवेश पाती हैं या नहीं? कृष्ण तो नगर की स्त्रियों से खुलकर बातें करते होंगे। वे उनके साथ गाते, परिहास करते, पहेलियाँ बुझाते तथा न जाने कितनी बातें करते होंगे। क्या कभी कृष्ण यह कहते हैं, ‘हे नगर की स्त्रियो! तुम्हारा जैसे परिष्कृत गाना तथा बोलना मेरे ग्राम की गोपियों में नहीं पाया जाता। वे इन बातों को समझ नहीं सकेंगी।’ क्या वे कभी इस तरह से भी हमारे विषय में कहते हैं?”

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभि-

वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये ।

रेमे क्वणच्चरणनूपुरासगोष्ठ्याम्

अस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥

#### शब्दार्थ

ताः—वे; किम्—क्या; निशाः—रातें; स्मरति—स्मरण करता है; यासु—जिनमें; तदा—तब; प्रियाभिः—अपनी प्रेयसियों के साथ; वृन्दावने—वृन्दावन के जंगल में; कुमुद—कमलों; कुन्द—तथा चमेली के कारण; शशाङ्क—तथा चन्द्रमा के कारण; रम्ये—आकर्षक; रेमे—विहार या रमण किया; क्वणत्—बजते हुए; चरण—नूपुर—पाँव के घुँघरू; रास—गोष्ठ्याम्—रास-नृत्य की गोष्ठी में; अस्माभिः—हमारे साथ; ईडित—प्रशंसित; मनोज्ञ—सुहावनी; कथः—कथाएँ; कदाचित्—कभी।

क्या वे वृन्दावन के जंगल में उन रातों का स्मरण करते हैं, जो कमल, चमेली तथा प्रकाशमान चन्द्रमा से सुन्दर लगती थीं? जब हम उनकी मनमोहिनी लीलाओं का गुणगान करतीं तो वे रास-नृत्य के घेरे में जो कि घुँघरूओं के संगीत से गुंजायमान होता था, हम प्रेयसियों के साथ आनन्द विहार करते थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस श्लोक की गहन अनुभूति का वर्णन इस प्रकार करते हैं, “गोपियाँ जानती थीं कि वृन्दावन के समान कोई दूसरा रमणीक स्थान नहीं हो सकता। ब्रह्माण्ड के

किसी कोने में वृन्दावन के जंगल के समान आकर्षक दृश्य नहीं मिल सकता। वह पवित्र फूलों से सुगन्धित था और पवित्र यमुना नदी की शान्त तरंगों से प्रतिबिम्बित पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित था। कृष्ण को गोपियों जितना कोई प्यार नहीं करता था, अतः उन्हें पूरी तरह से अन्य कोई जान भी नहीं सकता था। गोपियों ने कृष्ण के प्रति निजी भाव से पूर्णतया सेवा की थी जो और कोई नहीं कर सकता था। इस तरह गोपियाँ सोच सोचकर किंकर्तव्यविमूढ़ थीं कि कृष्ण अब वृन्दावन से तथा उनकी सेवाओं से विहीन हैं। वे समस्त कामवासनाओं से रहित होकर निराशा से पराभूत थीं क्योंकि वे प्रेमपूर्ण सेवा से उन्हें सुख नहीं दे पा रही थीं। वे इसकी कल्पना भी नहीं कर पा रही थीं कि जिस तरह वे उनके संग वृन्दावन में विहार करते थे उस तरह अन्यत्र कर सकते हैं।”

अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ।  
सञ्जीवयन्नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥ ४४ ॥

#### शब्दार्थ

अपि—क्या; एष्यति—आयेगा; इह—यहाँ; दाशार्हः—दशार्हवंशी कृष्ण; तप्ताः—संतप्त; स्व-कृतया—अपनी ही करनी से; शुचा—शोक से युक्त; सञ्जीवयन्—जीवनदान दिलाते हुए; नु—शायद; नः—हमको; गात्रैः—अपने अंगों के (स्पर्श) द्वारा; यथा—जिस तरह; इन्द्रः—इन्द्र; वनम्—जंगल को; अम्बुदैः—बादलों से।

क्या वह दशार्ह वंशज यहाँ फिर से आयेगा और अपने अंगों के स्पर्श से उन सबों को फिर से जिलायेगा जो अब उन्हीं के द्वारा उत्पन्न किए गए शोक से जल रहे हैं? क्या वह हमें उसी प्रकार बचा लेगा जिस तरह भगवान् इन्द्र जलधारी बादलों से जंगल को पुनः जीवनदान देते हैं?

कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ।  
नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वतः ॥ ४५ ॥

#### शब्दार्थ

कस्मात्—क्यों; कृष्णः—कृष्ण; इह—यहाँ; आयाति—आयेगा; प्राप्त—पाकर; राज्यः—राज्य; हत—मारकर; अहितः—अपने शत्रुओं को; नर-इन्द्र—राजाओं की; कन्याः—पुत्रियों को; उद्वाह्य—विवाह कर; प्रीतः—सुखी; सर्व—सभी; सुहृत्—शुभचिन्तकों से; वृतः—घिरा हुआ।

भला राज्य जीत लेने, अपने शत्रुओं का वध कर लेने और राजाओं की पुत्रियों के साथ विवाह कर लेने के बाद कृष्ण यहाँ क्यों आने लगे? वे वहाँ अपने सारे मित्रों तथा शुभचिन्तकों से घिरेरहकर प्रसन्न हैं।



किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ।

श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥ ४६ ॥

#### शब्दार्थ

किम्—क्या; अस्माभिः—हम सबों के साथ; वन—जंगल; ओकोभिः—जिनका आवास; अन्याभिः—अन्य स्त्रियों के साथ; वा—अथवा; महा-आत्मनः—महापुरुष ( कृष्ण ) के लिए; श्री—लक्ष्मी के; पतेः—पति के लिए; आप्त-कामस्य—जिनकी इच्छाएँ पूरी हो चुकी हैं; क्रियेत—सेवा की जानी है; अर्थः—प्रयोजन; कृत-आत्मनः—जो पूर्ण है उसके लिए ।

महापुरुष कृष्ण लक्ष्मी के स्वामी हैं और वे जो भी चाहते हैं वह स्वतः पा लेते हैं। जब वे अपने में पहले से पूर्ण हैं, तो हम वनवासिनियाँ या अन्य स्त्रियाँ उनके प्रयोजन को कैसे पूरा कर सकती हैं ?

तात्पर्य : यद्यपि गोपियाँ पछता रही थीं कि कृष्ण मथुरा की स्त्रियों से मेल-जोल कर रहे हैं किन्तु अब उनकी समझ में आने लगा कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण उन्हें किसी स्त्री की आवश्यकता नहीं थी। यह तो उनकी अहैतुकी कृपा है कि वे अपने प्रिय भक्तों को अपनी संगति प्रदान करते हैं।

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला ।

तज्जानतीनां नः कृष्णो तथाप्याशा दुरत्यया ॥ ४७ ॥

#### शब्दार्थ

परम्—सर्वोच्च; सौख्यम्—सुख; हि—निस्सन्देह; नैराश्यम्—अन्यमनस्कता; स्वैरिणी—व्यभिचारिणी; अपि—यद्यपि; आह—कहा; पिङ्गला—पिंगला नामक वेश्या; तत्—उस; जानतीनाम्—जानने वालों का; नः—हमारे लिए; कृष्णो—कृष्ण पर केन्द्रित; तथा अपि—फिर भी; आसा—आशा; दुरत्यया—पार करना असम्भव ।

दरअसल सर्वोच्च सुख तो समस्त इच्छाओं का परित्याग करने में है जैसा कि पिंगला नामक वेश्या तक ने भी कहा है। यह जानते हुए भी हम कृष्ण को पाने की अपनी आशाएँ नहीं छोड़ सकतीं।

तात्पर्य : पिंगला की कहानी श्रीमद्भागवत् के ग्यारहवें स्कंध के आठवें अध्याय में आई है।

क उत्सहेत सन्त्यक्तुमुत्तमःश्लोकसंविदम् ।

अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गान्न च्यवते क्वचित् ॥ ४८ ॥

#### शब्दार्थ

कः—कौन; उत्सहेत—सहन कर सकता है; सन्त्यक्तुम्—त्याग कर पाना; उत्तमःश्लोक—भगवान् कृष्ण से; संविदम्—घनिष्ठ बातें; अनिच्छतः—न चाहते हुए; अपि—भी; यस्य—जिसके; श्रीः—लक्ष्मीजी; अङ्गात्—शरीर से; न च्यवते—विलग नहीं होने देते; क्वचित्—कभी ।

भला भगवान् कृष्ण से घुल-मिल कर बातें करने को छोड़ पाना कौन सहन कर सकता है ?

यद्यपि वे श्रीदेवी में तनिक भी रुचि नहीं दर्शाते किन्तु वे उनके वक्षस्थल पर बने स्थान से कभी इधर-उधर नहीं होती।

सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ।  
सङ्कर्षणसहायेन कृष्णोनाचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥

#### शब्दार्थ

सरित्—नदियाँ; शैल—पर्वत; वन-उद्देशाः—जंगली क्षेत्र; गावः—गौवें; वेणु-रवाः—वंशी की ध्वनि; इमे—ये सब; सङ्कर्षण—बलराम; सहायेन—जिनके साथी; कृष्णो—कृष्ण द्वारा; आचरिताः—उपभोग की गई; प्रभो—हे स्वामी ( उद्धव )।  
हे उद्धव प्रभु, जब यहाँ कृष्ण बलराम के साथ थे तो वे इन सारी नदियों, पर्वतों, जंगलों, गौवों तथा वंशी की ध्वनियों का आनन्द लिया करते थे।

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत ।  
श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥ ५० ॥

#### शब्दार्थ

पुनः पुनः—बारम्बार; स्मारयन्ति—याद दिलाती हैं; नन्द-गोप-सुतम्—गवालों के राजा नन्द के पुत्र की; बत—निश्चय ही; श्री—दैवी; निकेतैः—चिह्नों से युक्त; तत्—उसका; पदकैः—चरण-चिह्नों के कारण; विस्मर्तुम्—भुलाने के लिए; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; शक्नुमः—हम सक्षम हैं।  
ये सब हमें नन्द के पुत्र की सदैव याद दिलाते हैं। निस्सन्देह चूँकि हम दैवी-चिह्नों से अंकित कृष्ण के चरण-चिह्नों को देखती हैं अतः हम उन्हें कभी भी नहीं भुला सकतीं।

गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ।  
माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मराम हे ॥ ५१ ॥

#### शब्दार्थ

गत्या—अपनी चाल से; ललितया—आकर्षक; उदार—उदार; हास—हँसी; लीला—क्रीड़ापूर्ण; अवलोकनैः—चितवनों से; माध्व्या—मधु जैसी; गिरा—वाणी से; हृत—चुराये गये; धियः—चित्त; कथम्—कैसे; तम्—उसको; विस्मराम—हम भूल सकती हैं; हे—हे ( उद्धव )।  
हे उद्धव, हम उन्हें कैसे भुला सकती हैं जब उनकी मनोहर चाल, उनकी उदार हँसी, चपल

चितवनों एवं मधुर शब्दों से हमारे चित्त चुराये जा चुके हैं?

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।  
मग्नमुद्गर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥ ५२ ॥

#### शब्दार्थ

हे नाथ—हे स्वामी; हे रमा-नाथ—हे लक्ष्मीपति; ब्रज-नाथ—हे ब्रज के स्वामी; आर्ति—कष्ट के; नाशन—हे नष्ट करने वाले; मग्नम्—डूबी हुई; उद्धर—उबारो; गोविन्द—हे गोविन्द; गोकुलम्—गोकुल को; वृजिन—दुख के; अर्णवात्—समुद्र से।

हे नाथ, हे रमानाथ, हे ब्रजनाथ! हे समस्त कष्टों के विनाशक गोविन्द! कृपया अपने गोकुल को व्यथा के उस सागर से उबार लें, जिसमें वह डूबा जा रहा है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस दृश्य की गहराई में जाकर कहते हैं—कोई गोपियों के समक्ष प्रस्ताव कर सकता है “आप लोग अन्यत्र क्यों नहीं चली जातीं। वृन्दावन छोड़ दीजिये तो फिर आपको ये नदियाँ, पर्वत तथा जंगल नहीं देखने पड़ेंगे। अपने आँचल से आँखें ढक लीजिये, अपनी बुद्धि से किसी अन्य विचार में मन को ले जाइये और इस तरह कृष्ण को भूल जाइये।” इस प्रस्ताव का उत्तर गोपियाँ पिछले श्लोक में यह कहकर देती हैं, “अब हममें अपनी बुद्धि नहीं रही क्योंकि कृष्ण अपने चरम सौन्दर्य तथा आकर्षण से उसे हर ले गये हैं।”

इस श्लोक में गोपियों की भावनाएँ इतनी प्रबल हो उठती हैं कि वे उद्धव की परवाह नहीं करतीं और वे मथुरा की ओर मुख करके अपने रोदन से कृष्ण को सम्बोधित करती हैं। वे कृष्ण को ब्रजनाथ कहती हैं क्योंकि भूतकाल में कृष्ण ने अपने प्रिय ग्रामवासियों की रक्षा करने के लिए अनेक अचिन्त्य लीलाएँ की थीं—यथा गोवर्धन पर्वत को धारण करना तथा अनेक भयावने असुरों का वध करना। इस हृदय विदारक श्लोक में गोपियाँ चिल्लाकर कृष्ण से कहती हैं कि वे अपने अबोध ग्रामवासियों के साथ भोगे गये मधुर अद्भुत सम्बन्ध को स्मरण करें। दरअसल श्रीकृष्ण अपने पिता की गौवों की देखभाल करते थे और गोपियाँ उनसे याचना करती हैं कि वे इन कार्यों का स्मरण करके उन्हें फिर से करने के लिए लौट आयें।

श्रीशुक उवाच

ततस्ताः कृष्णासन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः ।

उद्धवं पूजयां चक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; ततः—तब; ताः—वे; कृष्णा-सन्देशैः—कृष्ण के संदेशों से; व्यपेत—हटा दिया; विरह—वियोग का; ज्वराः—ज्वर; उद्धवम्—उद्धव को; पूजयाम् चक्रुः—पूजा की; ज्ञात्वा—जान कर; आत्मानम्—अपने आपको; अधोक्षजम्—परमेश्वर के रूप में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कृष्ण के संदेशों से विरह का ज्वर हट जाने पर गोपियों ने उद्धव को अपने प्रभु कृष्ण से अभिन्न जान कर, उनकी पूजा की।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि ज्ञात्वात्मानम् अधोक्षजम् शब्दों से यह भी सूचित होता है कि गोपियाँ कृष्ण को अपने जीवनो की आत्मा और इस तरह आध्यात्मिक रूप में उनसे अपने को एकाकार मानती हैं ।

उवास कतिचिन्मासानोपीनां विनुदन्शुचः ।  
कृष्णलीलाकथां गायत्रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥

#### शब्दार्थ

उवास—रहते थे; कतिचित्—कुछ; मासान्—महीनों तक; गोपीनाम्—गोपियों के; विनुदन्—दूर करते हुए; शुचः—दुख; कृष्ण-लीला—कृष्ण लीलाओं की; कथाम्—कथाएँ; गायन्—गाते हुए; रमयाम् आस—आनन्द दिया; गोकुलम्—गोकुल को ।

उद्धव वहाँ पर कृष्ण की लीलाओं की कथाएँ कहकर गोपियों का दुख दूर करते हुए कई महीनों तक रहे । इस तरह वे सभी गोकुलवासियों के लिए आनन्द ले आये ।

तात्पर्य : इस प्रसंग में महान् आचार्य जीव गोस्वामी की टीका है कि वृन्दावन के प्रवासकाल में उद्धव ने कृष्ण के पोष्य माता-पिता, नन्द तथा यशोदा, को प्रोत्साहित करने की विशेष सतर्कता बरती ।

यावन्त्यहानि नन्दस्य ब्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः ।  
ब्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५ ॥

#### शब्दार्थ

यावन्ति—जितने; अहानि—दिन; नन्दस्य—राजा नन्द के; ब्रजे—ब्रज में; अवात्सीत्—रहे; सः—वह; उद्धवः—उद्धव; ब्रज-ओकसाम्—ब्रजवासियों को; क्षण-प्रायाणि—एक क्षण बीतने जैसे; आसन्—थे; कृष्णस्य—कृष्ण की; वार्तया—वार्ताओं के कारण ।

उद्धव जितने दिनों तक नन्द के ब्रज ग्राम में रहे वे सारे दिन ब्रजवासियों को एक क्षण के तुल्य प्रतीत हुए क्योंकि उद्धव सदा कृष्ण की वार्ताएँ करते रहते थे ।

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् ।  
कृष्णं संस्मारयत्रेमे हरिदासो ब्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥

#### शब्दार्थ

सरित्—नदियाँ; वन—जंगल; गिरि—पर्वत; द्रोणीः—घाटियाँ; वीक्षन्—देखते हुए; कुसुमितान्—फूले हुए; द्रुमान्—वृक्षों को; कृष्णम्—कृष्ण के विषय में; संस्मारयन्—याद दिलाते हुए; रेमे—आनन्द लिया; हरि-दासः—भगवान् हरि के सेवक ने; ब्रज-ओकसाम्—ब्रजवासियों के लिए ।

हरि के दास ( उद्धव ) ने ब्रज की नदियों, जंगलों, पर्वतों, घाटियों तथा पुष्पित वृक्षों को देख देखकर और भगवान् कृष्ण के विषय में स्मरण करा-कराकर वृन्दावनवासियों को प्रेरणा

देने में आनन्द का अनुभव किया।

**तात्पर्य :** श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि जब उद्धव वृन्दावन में घूमते थे तो वे ब्रजवासियों से उन प्रत्येक स्थलों में जैसे नदियों, जंगलों, पर्वतों तथा घाटियों में भगवान् द्वारा की गई लीलाओं के विषय में प्रश्न पूछपूछ करके उन्हें कृष्ण की याद दिलाते रहते थे। इस तरह उद्धव ने उनके सान्निध्य में अगाध दिव्य आनन्द प्राप्त किया।

दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णावेशात्मविक्लवम् ।

उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७ ॥

#### शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; एवम्—इस तरह; आदि—तथा अधिक; गोपीनाम्—गोपियों के; कृष्ण-आवेश—कृष्ण के विचारों में उनकी तल्लीनता; आत्म—से युक्त; विक्लवम्—मानसिक क्षोभ; उद्धवः—उद्धव ने; परम—परम; प्रीतः—प्रसन्न; ताः—उनको; नमस्यन्—नमस्कार करते हुए; इदम्—यह; जगौ—गाया।

इस तरह यह देखकर कि गोपियाँ किस तरह कृष्ण में पूर्णतया तल्लीन रहने से सदैव विक्षुब्ध रहती हैं, उद्धव अत्यधिक प्रसन्न थे। उन्हें नमस्कार करने की इच्छा से उन्होंने यह गीत गाया।

**तात्पर्य :** *विक्लव* का अर्थ “मानसिक क्षोभ” है और इसे सामान्य भौतिक क्लेश से नहीं मिलाना चाहिए। यह स्पष्ट कहा गया है कि उद्धव अत्यधिक प्रसन्न थे और इसका कारण था कि वे देख चुके थे कि गोपियों को सर्वोच्च भाव-दशा प्राप्त हो चुकी है। उद्धव द्वारका दरबार के माननीय सदस्य थे और राजनैतिक मामलों के महत्त्वपूर्ण मंत्री थे फिर भी उनके मन में यशस्विनी गोपियों को नमस्कार करने की इच्छा उत्पन्न हुई—यद्यपि बाह्य रूप से ये गोपियाँ वृन्दावन नामक क्षुद्र ग्राम की ग्वाल-कन्याएँ मात्र थीं। इस तरह अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उन्होंने निम्नलिखित श्लोक गाये। श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि वृन्दावन के प्रवास में उद्धव नित्य ही इन श्लोकों को गाया करते थे।

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो

गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।

वाञ्छन्ति यद्धवभियो मुनयो वयं च

किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥ ५८ ॥

#### शब्दार्थ

एताः—ये स्त्रियाँ; परम्—अकेले; तनु—अपने शरीर; भूतः—ठीक से पालती हैं; भुवि—पृथ्वी पर; गोप-वध्वः—ये युवती गोपियाँ; गोविन्दे—गोविन्द में; एव—एकान्त रूप से; निखिल—सबों के; आत्मनि—आत्मा; रूढ—पूर्ण; भावाः—प्रेमपूर्ण आकर्षण; वाञ्छन्ति—चाहती हैं; यत्—जो; भव—भौतिक जगत; भियः—भयभीत; मुनयः—मुनिगण; वयम्—हम; च—भी; किम्—क्या लाभ; ब्रह्म—ब्राह्मण के रूप में या ब्रह्मा के रूप में; जन्मभिः—जन्म लेने से; अनन्त—अनन्त भगवान् की; कथा—कथा के; रसस्य—रसिक के लिए।

[ उद्धव ने गाया ] : पृथ्वी के समस्त व्यक्तियों में ये गोपियाँ ही वास्तव में अपने देहधारी जीवनों को सफल बना पाई हैं क्योंकि इन्होंने भगवान् गोविन्द के लिए शुद्ध प्रेम की पूर्णता प्राप्त कर ली है। इस संसार से डरने वालों, बड़े-बड़े मुनियों तथा हम सबों को इनके शुद्ध प्रेम की लालसा बनी रहती है। जिसने अनन्त भगवान् की कथाओं का आस्वाद कर लिया है उसके लिए उच्च ब्राह्मण के रूप में या साक्षात् ब्रह्मा के रूप में भी जन्म लेने से क्या लाभ?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि यहाँ पर ब्रह्मजन्मभिः शब्द तीन बार जन्म लेने का सूचक है १) वीर्य द्वारा २) जनेऊ संस्कार द्वारा तथा ३) यज्ञ-दीक्षा द्वारा। ये सभी शुद्ध कृष्णभावनामृत की बराबरी नहीं कर सकते। निस्सन्देह इस श्लोक को कहने वाले उद्धव शुद्ध ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे किन्तु वे महान् गोपियों की तुलना में इस पद की अवमानना करते हैं।

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः

कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।

नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-

च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥

#### शब्दार्थ

क्व—कहाँ तो; इमाः—ये; स्त्रियः—स्त्रियाँ; वन—वनों में; चरीः—विचरण करने वाली; व्यभिचार—अनुचित आचरण से; दुष्टाः—दूषित; कृष्णे—कृष्ण के लिए; क्व च—और कहाँ; एषः—यह; परम-आत्मनि—परमात्मा में; रूढ-भावः—पूर्ण-प्रेम की अवस्था ( महाभाव ); ननु—निश्चय ही; ईश्वरः—भगवान्; अनुभजतः—निरन्तर पूजा करने वाले के लिए; अविदुषः—विद्वान नहीं; अपि—यद्यपि; साक्षात्—साक्षात्; श्रेयः—कल्याण; तनोति—प्रदान करता है; अगद—औषधियों का; राजः—राजा ( अमृत, जिसे देवता अमर होने के लिए पीते थे ); इव—मानो; उपयुक्तः—लिया हुआ।

यह कितना आश्चर्यजनक है कि जंगल में विचरण करने वाली एवं अनुपयुक्त आचरण के कारण दूषित सी प्रतीत होने वाली इन सीधी-सादी स्त्रियों ने परमात्मा कृष्ण के लिए शुद्ध प्रेम की पूर्णता प्राप्त कर ली है। तो भी यह सच है कि भगवान् एक अज्ञानी पूजक को भी अपना आशीर्वाद देते हैं जिस प्रकार कि अज्ञानी व्यक्ति द्वारा किसी उत्तम औषधि के अवयवों से अनजान होते हुए पी लेने पर भी वह अपना प्रभाव दिखलाती है।

तात्पर्य : प्रथम दो पंक्तियों में क्व शब्द दो अनमेल वस्तुओं में तीव्र विरोध दिखलाता है—प्रथम

पंक्ति में गोपियों की ऊपर से तुच्छ तथा अशुद्ध दिखने वाली स्थिति का वर्णन है और दूसरी पंक्ति में जीवन की चरम सिद्धि की प्राप्ति का वर्णन है। इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती तीन प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्रियों का वर्णन करते हैं। पहला प्रकार उन स्त्रियों का है, जो अपने पति तथा प्रेमी दोनों के साथ संभोग करती हैं और दोनों में से किसी की भी विश्वासपात्र नहीं होतीं। इस आचरण की भर्त्सना समाज तथा शास्त्र दोनों करते हैं। दूसरा प्रकार उन व्यभिचारिणियों का है, जो अपने पति को त्याग कर केवल प्रेमी के साथ संभोग करती हैं। समाज तथा शास्त्र दोनों इस आचरण की भी निन्दा करते हैं यद्यपि ऐसी स्त्री में यह गुण तो होता ही है कि पतित होने पर भी वह एक व्यक्ति के प्रति समर्पित रहती है। तीसरी प्रकार की व्यभिचारिणी वह है, जो अपने पति को त्याग कर भगवान् को ही एकमात्र प्रेमी मानकर आनंद भोगती है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि यद्यपि सामान्य मूर्ख लोग इस तीसरी दशा की आलोचना करते हैं किन्तु जो अध्यात्मविज्ञान में समुन्नत हैं, वे इस आचरण की प्रशंसा करते हैं। इसीलिए समाज तथा शास्त्र भगवान् के प्रति एकान्तिक भक्ति की प्रशंसा करते हैं। गोपियों का आचरण ऐसा ही था। अतः व्यभिचारदुष्टा “विचलन के कारण दूषित” शब्द गोपियों के आचरण तथा सामान्य व्यभिचारिणियों में आभासी सादृश्य को दर्शाता है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः

स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-

लब्धाशिषां य उदगाद्ब्रजवल्लभीनाम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अयम्—यह; श्रियः—लक्ष्मी का; अङ्गे—वक्षस्थल पर; उ—हाय; नितान्त-रतेः—घनिष्टतापूर्वक सम्बन्धित;  
प्रसादः—अनुग्रह; स्वः—स्वर्गलोक की; योषिताम्—स्त्रियों का; नलिन—कमल के फूल की; गन्ध—सुगन्ध वाला; रुचाम्—  
तथा शारीरिक कान्ति; कुतः—काफी कम; अन्याः—अन्य; रस-उत्सवे—रस-नृत्य के उत्सव में; अस्य—भगवान् कृष्ण की;  
भुज-दण्ड—भुजाओं से; गृहीत—आलिंगित; कण्ठ—गले; लब्ध-आशिषाम्—ऐसा आशीर्वाद प्राप्त; यः—जो; उदगात्—  
प्रकट हुआ; ब्रज-वल्लभीनाम्—ब्रजभूमि की दिव्य बालाओं का, सुन्दरी गोपियों का।

जब श्रीकृष्ण रासलीला में गोपियों के साथ नाच रहे थे तो भगवान् की भुजाएँ गोपियों का आलिंगन कर रही थीं। यह दिव्य अनुग्रह न तो कभी लक्ष्मीजी को प्राप्त हुआ न वैकुण्ठ की ललनाओं ( अंगनाओं ) को। निस्सन्देह कमल के फूल जैसी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्ध से युक्त स्वर्गलोक की सबसे सुन्दर बालाओं ने भी कभी इस तरह की कल्पना तक नहीं की थी। तो फिर

उन संसारी स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाय जो भौतिक दृष्टि से अतीव सुन्दर हैं?

तात्पर्य : इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत चैतन्यचरितामृत (मध्य ८.८०) से लिये गये हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका इस प्रकार है; अवतारों में श्रेष्ठ भगवान् कृष्ण शुद्धता तथा नैतिकता के उच्चतम पद पर आसीन हैं अतः वे अपने गोचारण, जंगल में विचरण, नन्हें बन्दरों के साथ भोजन करने, दही चुराने, अन्यो की स्त्रियों को बरगलाने इत्यादि के विषय में सांसारिक आलोचना स्वीकार करते हुए भी सबों के प्रशंसापात्र बने रहे। इसी तरह गोपियों ने जो भगवान् की ह्लादिनी शक्ति से बनी हैं लक्ष्मीजी की तुलना में शुद्धता तथा मांगलिकता का सर्वोच्च मानदण्ड प्राप्त किया। इस तरह गोपियाँ सर्वाधिक गौरवान्वित हैं, यद्यपि संसारी लोगों के द्वारा उनकी आलोचना होती रही क्योंकि वे जंगल में रहने वाली तथा ऊपरी तौर पर अनुचित लगने वाले आचरण करने वाली ग्वाल-स्त्रियाँ थीं।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां

वृन्दावने किमपि गुल्मलताौषधीनाम् ।

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा

भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

आसम्—गोपियों की; अहो—ओह; चरण-रेणु—चरणकमलों की धूलि; जुषाम्—अनुरक्त; अहम् स्याम्—मैं बनूँ; वृन्दावने—वृन्दावन में; किम् अपि—कोई एक; गुल्म-लता-ओषधीनाम्—झाड़ियों, लताओं तथा वनौषधियों में से; या—जो; दुस्त्यजम्—छोड़ पाना अतीव कठिन; स्व-जनम्—पारिवारिक सदस्यों को; आर्य-पथम्—सतीत्व-मार्ग; च—तथा; हित्वा—त्यागकर; भेजुः—पूजा किया; मुकुन्द-पदवीम्—मुकुन्द या कृष्ण के चरणकमलों की; श्रुतिभिः—वेदों के द्वारा; विमृग्याम्—खोजे जाने के लिए।

वृन्दावन की गोपियों ने अपने पतियों, पुत्रों तथा अन्य परिवार वालों का साथ त्याग दिया है जिनको त्याग पाना अतीव कठिन होता है। उन्होंने मुकुन्द कृष्ण के चरणकमलों की शरण पाने के लिए सतीत्व मार्ग का परित्याग कर दिया है, जिसे वैदिक ज्ञान द्वारा खोजा जाता है। ओह! मैं वृन्दावन की इन झाड़ियों, लताओं तथा जड़ी-बूटियों में से कोई एक भी होने का सौभाग्य प्राप्त करूँ क्योंकि गोपियाँ उन्हें अपने चरणों से रौंदती हैं और अपने चरणकमलों की धूल से उन्हें आशीर्वाद देती हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत चैतन्यचरितामृत (अन्त्य ७.४७)



से लिए गये हैं।

यहाँ पर श्री उद्धव एक पूर्ण वैष्णव की उदारता की मनोवृत्ति दिखलाते हैं। वे उच्च प्रेमावस्था में गोपियों की बराबरी करने की प्रार्थना नहीं करते अपितु वृन्दावन में एक झाड़ी या लता के रूप में जन्म लेना चाहते हैं जिससे जब गोपियाँ उनके ऊपर से चलें तो वे उनकी चरण-रज पाकर धन्य हो जाँय। लजीली गोपियाँ उद्धव जैसे महापुरुष को ऐसे आशीर्वाद देने के लिए कभी तैयार नहीं होंगी इसलिए उद्धव ने होशियारी से वृन्दावन में एक पौधे के रूप में जन्म लेकर ऐसी कृपा प्राप्त करनी चाही।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-

योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।

कृष्णस्य तद्भगवतः चरणारविन्दं

न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ६२ ॥

#### शब्दार्थ

या:—जो ( गोपियाँ ); वै—निस्सन्देह; श्रिया—लक्ष्मी द्वारा; अर्चितम्—पूजित; अज—अजन्मा ब्रह्मा; आदिभिः—तथा अन्य देवताओं द्वारा; आप्त-कामैः—जिनकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं; योग-ईश्वरैः—योगशक्ति के स्वामियों द्वारा; अपि—यद्यपि; यत्—जो; आत्मनि—मन में; रास—रास-नृत्य की; गोष्ठ्याम्—गोष्ठी में; कृष्णस्य—कृष्ण की; तत्—वे; भगवतः—भगवान् के; चरण-अरविन्दम्—चरणकमलों को; न्यस्तम्—रखा हुआ; स्तनेषु—अपने स्तनों पर; विजहुः—उन्होंने त्याग दिया; परिरभ्य—आलिंगन करके; तापम्—अपनी जलन।

स्वयं लक्ष्मीजी तथा ब्रह्मा एवं अन्य सारे देवता जो योग सिद्धि के स्वामी हैं, भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की पूजा अपने मन के भीतर ही कर सकते हैं। किन्तु रास-नृत्य के समय कृष्ण ने तो इन गोपियों के स्तनों पर अपने चरण रखे और गोपियों ने उन्हीं चरणों का आलिंगन करके सारी व्यथाएँ त्याग दी।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्षणशः ।

यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥

#### शब्दार्थ

वन्दे—मैं वन्दना करता हूँ; नन्द-व्रज—नन्द महाराज के गोप-ग्राम को; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; पाद—चरणों की; रेणुम्—धूल को; अभीक्षणशः—निरन्तर; यासाम्—जिनकी; हरि—कृष्ण की; कथा—कथा के विषय में; उद्गीतम्—जोर से उच्चारण करते हुए; पुनाति—पवित्र करती है; भुवन-त्रयम्—तीनों लोकों को।

मैं नन्द महाराज के गोप-ग्राम की स्त्रियों की चरण-रज की बारम्बार वन्दना करता हूँ। जब ये गोपियाँ श्रीकृष्ण के यश का जोर जोर से कीर्तन करती हैं, तो वह ध्वनि तीनों लोकों को पवित्र कर देती है।

तात्पर्य : पिछले श्लोकों में गोपियों की महिमा की स्थापना करने के बाद श्री उद्धव अब उन्हें प्रत्यक्षतः नमस्कार करते हैं। श्री वैष्णव तोषणी के अनुसार उद्धव ने द्वारका में भगवान् कृष्ण की पटरानियों को भी इस तरह से नमस्कार नहीं किया था।

श्रीशुक उवाच

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च ।  
गोपानामन्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; गोपीः—गोपियों की; अनुज्ञाप्य—अनुमति लेकर; यशोदाम्—माता यशोदा को; नन्दम्—राजा नन्द को; एव च—भी; गोपान्—ग्वालों को; आमन्य—विदा लेकर; दाशार्हः—दशार्हवंशी उद्धव; यास्यन्—जाने ही वाले; आरुरुहे—चढ़ गये; रथम्—अपने रथ में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् दशार्हवंशी उद्धव ने गोपियों तथा माता यशोदा एवं नन्द महाराज से विदा होने की अनुमति ली। उन्होंने सारे ग्वालों से विदा ली और प्रस्थान करने के लिए वे अपने रथ पर सवार हो गये।

तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ।  
नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको ( उद्धव को ); निर्गतम्—गया हुआ; समासाद्य—पास आकर; नाना—विविध; उपायन—पूजा की वस्तुएँ; पाणयः—अपने हाथों में; नन्द-आदयः—नन्द तथा अन्य लोग; अनुरागेण—स्नेहपूर्वक; प्रावोचन्—बोले; अश्रु—आँसुओं सहित; लोचनाः—आँखें।

जब उद्धव प्रस्थान करने वाले थे तो नन्द तथा अन्य लोग पूजा की विविध वस्तुएँ लेकर उनके पास पहुँचे। उन लोगों ने अश्रुपूरित नेत्रों से उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि नन्द तथा ग्वाले किसी शिष्टाचारवश उद्धव के पास नहीं गये, अपितु कृष्ण के प्रिय मित्र के प्रति स्वैच्छिक अनुराग के कारण ही गये।

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्ण पादाम्बुजाश्रयाः ।  
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ

मनसः—मन के; वृत्तयः—कार्य; नः—हमारे; स्युः—होयें; कृष्ण—कृष्ण के; पाद-अम्बुज—चरणकमलों की; आश्रयाः—शरण लेकर; वाचः—हमारे शब्द; अभिधायिनीः—व्यक्त करते हुए; नाम्नाम्—उनके नामों को; कायः—हमारे शरीर; तत्—उसके प्रति; प्रह्वण-आदिषु—नमस्कार इत्यादि में ( व्यस्त )।

[ नन्द तथा अन्य ग्वालों ने कहा ] : हमारे मानसिक कार्य सदैव कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करें, हमारे शब्द सदैव उन्हीं के नामों का कीर्तन करें और हमारे शरीर सदैव उन्हीं को नमस्कार करें तथा उनकी ही सेवा करें।

तात्पर्य : वृन्दावनवासियों को दृढ़ विश्वास था कि भले ही उनकी प्रत्यक्ष संगति अपने प्यारे कृष्ण से न हो सकी हो किन्तु वे कभी भी उनसे विमुख नहीं होंगे। वे सभी भगवान् के सर्वोच्च शुद्ध भक्त थे।

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ।  
मङ्गलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥

#### शब्दार्थ

कर्मभिः—सकाम कर्मों द्वारा; भ्राम्यमाणानाम्—घुमाये जाने वालों का; यत्र क्व अपि—जहाँ कभी भी; ईश्वर—भगवान् की; इच्छया—इच्छा से; मङ्गल—शुभ; आचरितैः—कार्यों से; दानैः—दान से; रतिः—आसक्ति; नः—हमारी; कृष्णो—कृष्ण में; ईश्वरे—भगवान्।

भगवान् की इच्छा से हमें अपने सकाम कर्मों के फलस्वरूप इस संसार में जहाँ भी घूमना पड़े हमारे सत्कर्म तथा दान हमें सदा भगवान् कृष्ण का प्रेम प्रदान करें।

एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ।  
उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सभाजितः—सम्मान प्रदर्शित; गोपैः—ग्वालों द्वारा; कृष्ण-भक्त्या—कृष्ण के प्रति भक्ति से; नर-अधिप—हे मनुष्यों के शासक (परीक्षित); उद्धवः—उद्धव; पुनः—फिर; आगच्छत्—लौट आया; मथुराम्—मथुरा; कृष्ण-पालिताम्—कृष्ण द्वारा सुरक्षित।

[ शुकदेव गोस्वामी ने कहा ] : हे नृपति, इस तरह कृष्ण के प्रति भक्ति की अभिव्यक्ति द्वारा ग्वालों से सम्मानित होकर उद्धव मथुरा नगरी वापस चले गये जो कृष्ण के संरक्षण में थी।

तात्पर्य : कृष्णपालिताम् शब्द सूचित करता है कि यद्यपि उद्धव वृन्दावन भूमि से अत्यधिक अनुरक्त हो चुके थे, वे मथुरा लौट गये क्योंकि श्रीकृष्ण वहाँ पर स्वयं अपनी दिव्य लीलाएँ प्रदर्शित कर रहे थे।

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं ब्रजौकसाम् ।  
वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥

#### शब्दार्थ

कृष्णाय—कृष्ण को; प्रणिपत्य—सम्मान जताने के लिए गिर कर; आह—कहा; भक्ति—शुद्ध भक्ति की; उद्वेकम्—प्रचुरता; व्रज-ओकसाम्—व्रजवासियों की; वसुदेवाय—वसुदेव को; रामाय—बलराम को; राज्ञे—राजा ( उग्रसेन ) को; च—तथा; उपायनानि—भेंट के रूप में प्राप्त वस्तुएँ; अदात्—दिया।

गिर कर प्रणाम करने के बाद उद्धव ने कृष्ण से व्रजवासियों की महती भक्ति का वर्णन किया। उद्धव ने इसका वर्णन वसुदेव, बलराम तथा राजा उग्रसेन से भी किया और उन्हें वे वस्तुएँ भेंट कीं जिन्हें वे अपने साथ लाये थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “भ्रमर गीत” नामक सैंतालीसवें अध्याय के श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।